वर्ष–2, अंक–3
इंटरनेट संस्करण : 66

पत्रिका गर्भनाल

ISSN 2249–5967
मई 2012 ● ₹ 20

प्रवासी भारतीयों की मासिक पत्रिका

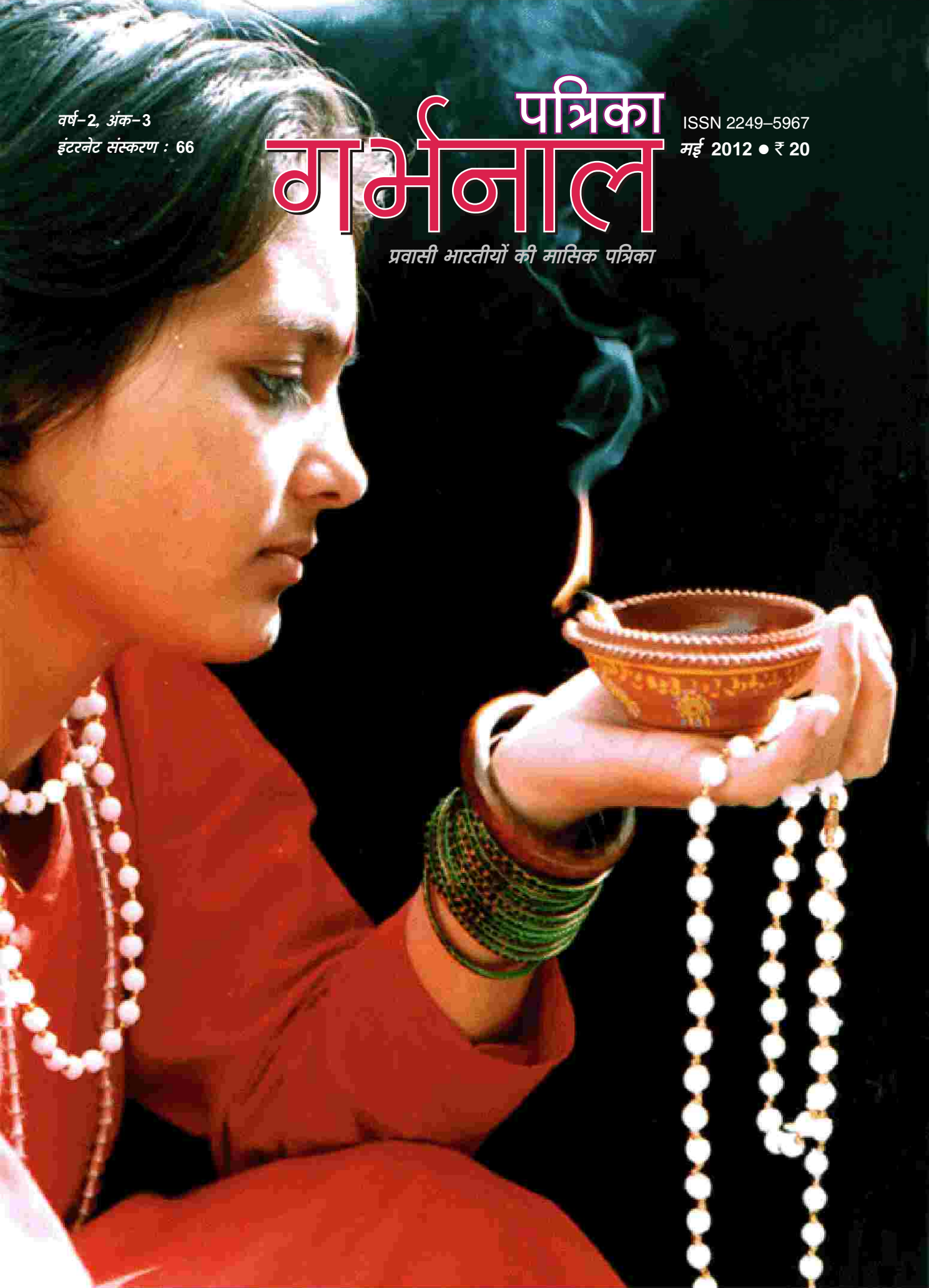

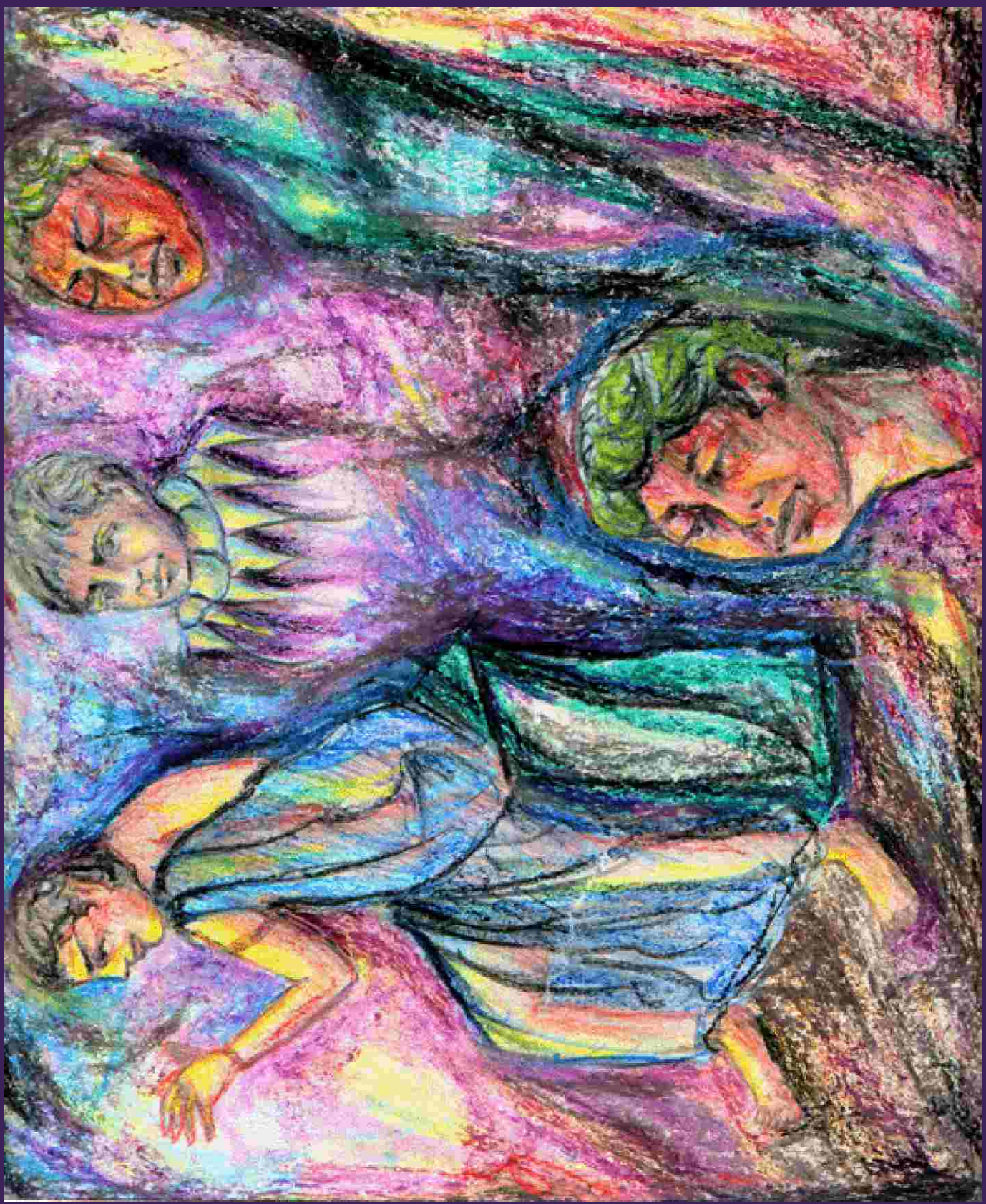

रामानंद शर्मा
ramanand210@gmail.com

अपनी बात

अगले वर्ष १२ जनवरी को स्वामी विवेकानन्द के जन्म के डेढ़ सौ साल पूरे हो जाएँगे. स्वामी विवेकानन्द की डेढ़सौंवी जयन्ती वर्ष में आज के सन्दर्भ में उनका पुनर्पाठ प्रासंगिक होगा. भारतीय समाज के सांस्कृतिक उत्तराधिकार के विवेचन में विवेकानन्द का उल्लेखनीय योगदान सम्मानित है. एक मान्यता है कि विवेकानन्द ने हिन्दु धर्म का पुनर्जागरण किया. लेकिन इस अवलोकन से अधिक उपयुक्त यह कहना होगा कि उन्होंने भारतीय समाज को एक सांस्कृतिक दृष्टि और सोच दी जो देश को संगठित होने और नवजीवन का संचार करने में प्रभावी एवं दूरगामी सिद्ध हुई. उन्होंने अपने अनुयायियों को हमेशा अपने धर्म के प्रति समर्पित रहते हुए सभी मतों का सम्मान करने कहा था. ईशा मसीह की तरह बनने का उनका आह्वान इसका एक उदाहरण है. उनका कहना था कि यह आवश्यक नहीं है कि जिस धर्मावलम्बी के रूप में हमारा जन्म हुआ है, उसमें ही हम मृत्यु तक बने रहें. आध्यात्मिक सत्य को स्वयं उद्घाटित करना चाहिए. सिखाई गई जानकारी का अन्धानुकरण करने को उन्होंने कभी उचित नहीं कहा. स्वयं विवेकानन्द ने स्वयं भी अपने गुरु रामकृष्ण का अन्धानुकरण नहीं किया था.

राष्ट्र का सांस्कृतिक उत्तराधिकार अतीत के अनुभवों एवं उपलब्धियों के इकट्ठे होते जाने से बना होता है. जीवित संस्कृतियाँ समय के प्रवाह में मिलती जा रही नई उपलब्धियों एवं तजुर्बों को समाहित करती रहती हैं. ऐसा नहीं कर पानेवाली संस्कृति के ऊपर जीवाश्म बनने का संकट मँड़राता होता है. विवेकानन्द का आह्वान हिन्दु मस्तिष्क के साथ इस्लामी शरीर का समन्वय करने का था. उन्होंने मस्तिष्क और शरीर दोनों के विकास पर समान ध्यान देने की बात कही थी. भारत को विश्वगुरु होने के दम्भ से मुक्त करते हुए उन्होंने आह्वान किया था कि पश्चिम से आधुनिक विज्ञान एवं प्रोद्यौगिकी सहित बहुत कुछ सीखना है. विवेकानन्द ने राष्ट्रवाद एवं विश्व नागरिकता की अवधारणाओं को पारस्परिकता से गुँथा हुआ सिद्ध किया है. क्या यह महज संयोग है कि विवेकानन्द शिकागो के धर्म सम्मेलन में और रवीन्द्रनाथ ठाकुर नोबल पुरस्कार से सम्मानित होने के बाद ही भारत में स्वीकृत एवं सम्मानित हुए?

आध्यात्म के प्रति विवेकानन्द के प्रवर्तन की कहानी दिलचस्प है. उनके कॉलेज के अंगरेज प्रिंसिपल ने विलियम वर्ड्सवर्थ की कविता की चर्चा में trance (भाव समाधि) शब्द की व्याख्या करते हुए छात्रों से कहा था कि इसका सही अर्थ समझना हो तो उन्हें दक्षिणेश्वर के रामकृष्ण के पास जाना चाहिए. इससे प्रेरित होकर अन्य कुछ छात्रों के अलावा नरेन्द्र (विवेकानन्द का मूल नाम) रामकृष्ण के पास गए थे. नरेन्द्र रामकृष्ण एवं उनके अवलोकनों को शुरू-शुरू में नहीं मान पाए, पर उनकी अवहेलना भी नहीं कर पा रहे थे. नरेन्द्र की प्रकृति ही थी कि किसी चीज को स्वीकार करने के पहले उसे जाँच लिया जाए. उन्होंने रामकृष्ण को परखा. रामकृष्ण ने कभी भी नरेन्द्र को युक्ति छोड़ने को नहीं कहा और धैर्य के साथ नरेन्द्र के सभी तर्कों एवं परीक्षणों का सामना किया. उनका कहना था -सत्य को सभी कोणों से देखने की कोशिश करो. रामकृष्ण के अधीन पाँच सालों के प्रशिक्षण ने नरेन्द्र को बेचैन युवा से परिपक्व विवेकानन्द में रूपान्तरित कर दिया. उसके बाद की घटनाएँ इतिहास हैं.

सन १८९७ ई. की पहली मई को रामकृष्ण मिशन की स्थापना उनका भारतीय समाज को अनुपम अवदान है. मिशन का मुख्यालय पश्चिमी बंगाल के बेलुर में हुगली नदी के पश्चिमी तट पर अवस्थित है. बेलुर मठ की इमारत अपने स्थापत्य के लिए विशिष्ट है, जो हिन्दु, इस्लामी एवं ईसाई नमूनों को समन्वयित करता है. दक्षिणेश्वर और बेलुर मठ एक-दूसरे के आमने-सामने हुगली नदी के पूर्वी एवं पश्चिमी तटों पर हमारे सांस्कृतिक उत्तराधिकार के क्रमशः आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं के साक्ष्य हैं. विवेकानन्द आधुनिक काल के पहले हिन्दु मिशनरी हैं.

रामकृष्ण मिशन भारत के सुदूरवर्ती अंचलों में अवस्थित अपने आश्रमों एवं शिक्षण संस्थानों के नेटवर्क के जरिए आपदा सहाय, ग्रामीण प्रबन्धन, जनजाति उन्नयन के अलावा प्राथमिक एवं उच्च शिक्षा एवं संस्कृति के क्षेत्रों में व्यापक एवं सराहनीय कार्य करता आ रहा है. सैंकड़ों हजारों दीक्षित संन्यासियों एवं गृहस्थ शिष्यों के सम्मिलित प्रयास से इनका संचालन होता है. विदेशों में भी मिशन के आश्रम सक्रिय हैं.

संन्यास ग्रहण करने के बावजूद विवेकानन्द ने वैराग्य ग्रहण नहीं किया था. संन्यासी और अपने परिवार के ज्येष्ठ पुत्र के दायित्वों का निर्वहन उन्होंने साथ साथ किया. पैतृक सम्पत्ति को लेकर लम्बी कानूनी लड़ाई में उलझते रहे थे. सुभोजन के प्रति लगाव से विरक्त नहीं हुए थे. तभी तो पश्चिम में वेदान्त के साथ बिरियानी को भी लोकप्रिय बनाने में वे उत्साहपूर्ण योगदान करते रहे थे. महापुरुष होते हुए भी सामान्य व्यक्तियों की तरह वे स्वजनों के लिए स्नेह, ममता के आवेग से युक्त थे. माँ के लिए बालक नरेन की हैसियत बनाई रखी थी. स्वामीजी के व्यक्तित्व का यह पहलू अत्यन्त आश्चर्यजनक एवं विरल है. ऐसे ही लोग कवि को आश्चर्यचकित करते हैं कि इनके प्राण किस प्रकार के प्रकाश से आलोकित रहते हैं.

गर्भनाल के अगले अंकों में स्वामी जी के पुनर्पाठ में आपका आमन्त्रण है. प्रतीक्षा रहेगी.

ganganand.jha@gmail.com

पत्रिका गर्भनाल

वर्ष-2, अंक-3 (इंटरनेट संस्करण : 66)
मई 2012

सम्पादकीय सलाहकार
गंगानन्द झा, भारत

परामर्श मंडल
वेद मित्र, एम.बी.ई., यू.के.
डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री, ऑस्ट्रेलिया
अनिल जनविजय, रूस
अजय भट्ट, बैंकाक
देवेश पंत, अमेरिका
उमेश ताम्बी, अमेरिका
आशा मोर, ट्रिनिडाड
भावना सक्सैना, सूरीनाम
डॉ. अनिल विद्यालंकार, भारत
डॉ. ओम विकास, भारत

सम्पादक
सुषमा शर्मा

तकनीकि सहयोग
डॉ. राजीव यादव, न्यूयार्क

आकल्पन सहयोग
डॉ. बृजेश तिवारी, लखनऊ

कम्पोजिंग
प्रताप परिहार

कानूनी सलाहकार
संजीव जायसवाल

सम्पर्क
डीएक्सई-23, मीनाल रेसीडेंसी,
जे.के. रोड, भोपाल-462023 (म.प्र.) भारत.
ईमेल : garbhanal@ymail.com

आवरण छायाचित्र
रामानुज शर्मा

प्रकाशित रचनाओं के विचार लेखकों के अपने हैं, जरूरी नहीं है कि सम्पादक इससे सहमत हों. विवाद की स्थिति में केवल भोपाल न्यायालय क्षेत्र ही रहेगा.

प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी सुषमा शर्मा के लिए बॉक्स कारूगेटर्स एण्ड ऑफसेट प्रिंटर्स, 14-बी, आई सेक्टर, औद्योगिक क्षेत्र, गोविन्दपुरा, भोपाल द्वारा मुद्रित एवं डीएक्सई-23, मीनाल रेसीडेंसी, जे.के. रोड, भोपाल से प्रकाशित.

>> 4

हिन्दी को बचाने के रास्ते

>> 7

बच्चे क्या बोल रहे हैं?

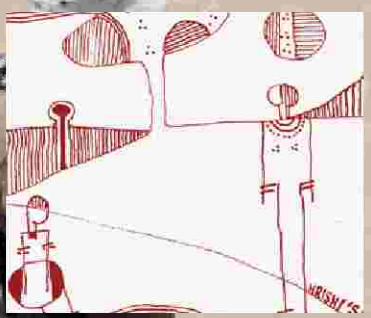

>> 16

बेमौत मौत

>> 21

एकनिष्ठता का सवाल

इस अंक में

मुद्दा :	डॉ. ओम विकास	4
	बबीता वाधवानी	7
बातचीत :	मधु अरोड़ा	9
स्मरण :	विजया सती	14
विचार :	महेन्द्र कुमार शर्मा	16
नजरिया :	राजकिशोर	21
यात्रा-वृत्तांत :	महेशचंद्र द्विवेदी	23
व्याख्या :	मनोज कुमार श्रीवास्तव	26
वेद की कविता :	प्रभुदयाल मिश्र	32
प्रश्नोत्तरी :	डॉ. ओमप्रकाश गुप्ता	33
गीता-सार :	अनिल विद्यालंकार	34
पंचतंत्र :		35
महाभारत :		36
बोधकथा :	सीताराम गुप्ता	38
	भूपेन्द्र कुमार दवे	50
अनुवाद :	गंगानन्द झा	39
कविता :	बीनू भटनागर	40
	अशोक गुप्ता	41
	नागेन्द्र दत्त वर्मा	42
	श्रीनिवास श्रीकान्त	43
	शैफाली	44
	प्रेमा झा	45
शायरी की बात :	नीरज गोस्वामी	46
कहानी :	महेंद्र दवेसर 'दीपक'	47
	विश्वजीत 'सपन'	51
सिनेमा की बात :	रामकिशोर पारचा	54
रपट :	अर्चना पैन्यूली	55
	श्रीमती आशा मोर	57
आपकी बात :		59

डॉ. ओम विकास

१ अगस्त १९४७ को उत्तरप्रदेश के एटा जनपद के ब्रह्मपुरी गांव में जन्म. आईआईटी कानपुर से बीटेक, एमटेक एवं पी-एच.डी. की डिग्रियाँ हासिल कीं. टीसीएस में सिस्टम्स इंजीनियर रहे. फिर भारत सरकार के तत्कालीन इलैक्टॉनिक्स विभाग, राष्ट्रीय सूचना केन्द्र और इंफोर्मेशन टैक्नोलॉजी विभाग में विविध पदों पर रहते हुए १९९० में "TDIL : भारतीय भाषाओं के लिए तकनीकी विकास" मिशन कार्यक्रम शुरू किया. विश्व भारत@tdil त्रैमासिक पत्रिका के संस्थापक संपादक रहे. ABV-IIITM ग्वालियर के निदेशक एवं जापान में भारतीय दूतावास में विज्ञान सलाहकार भी रहे हैं. अनेकों पुरस्कार मिले जिनमें प्रमुख हैं : उत्तरप्रदेश विज्ञान भूषण, इंदिरा गांधी राजभाषा, विज्ञान शिरोमणि, वास्विक औद्योगिक शोध पुरस्कार तथा विश्व हिंदी सम्मान. संप्रति : सीडेक केन्द्र समूह के सलाहकार हैं. ईमेल : Dr.OmVikas@gmail.com

मुद्दा

हिन्दी को बचाने के रास्ते

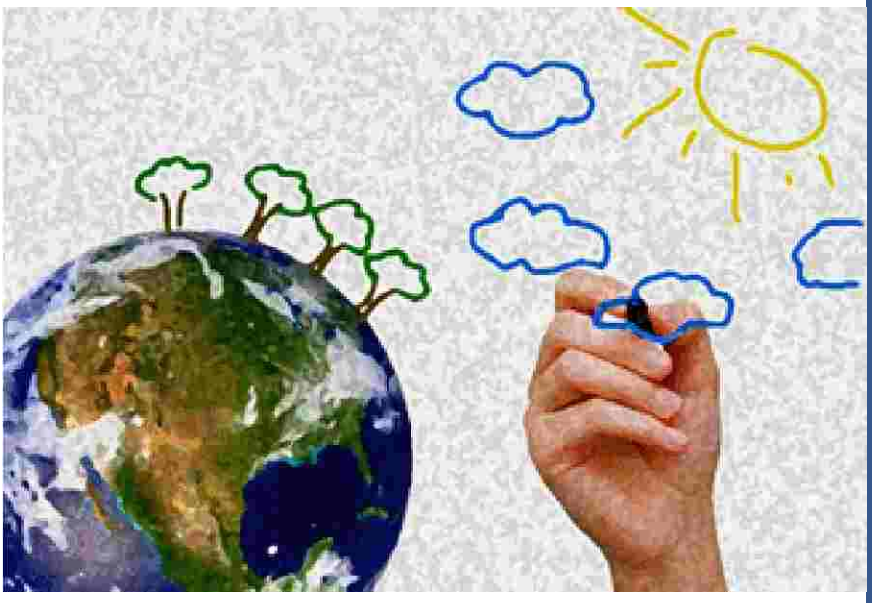

आधुनिक विश्व में प्राकृतिक त्रासदियों से त्रस्त होकर पर्यावरण एवं विकास पर गठित विश्व आयोग ने सातत्य-परक विकास को परिभाषित किया. याने विकास ऐसा हो जो मौजूदा जरूरतों को पूरा करे लेकिन भविष्य की पीढ़ी की जरूरतों को पूरा कर सकने की संभावनाओं को धूमिल न करे. आज की जरूरत पूरी हों और कल की जरूरतें भी, ऐसा पथ हो विकास का. एक उदाहरण लें - आज जरूरत है कार की, लेकिन इसके अवश्यांभावी पर्यावरण प्रदूषण को ध्यान में रख कर इसका डिजाइन हो, फ्यूल भी प्रदूषण मुक्त हो.

वर्तमान समस्या का समाधान करते समय सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरण लक्ष्यों का संतुलन बना रहे. सामाजिक लक्ष्य का तात्पर्य है समानता, सभी को साधन-सुलभता, सभी को समाज में घुलने मिलने और बढ़ने के समान अवसर और संस्कृति की संरक्षा. आर्थिक लक्ष्य में औद्योगिक बढ़त, व्यावसायिक सेवाएं, आम जरूरतें और श्रमिकों का योगदान आ सकते है. पर्यावरण लक्ष्य में जैविक विविधता, प्राकृतिक संसाधन, इको सिस्टम संतुलन और साफ हवा-पानी विचारणीय बिन्दु हैं. विकास में मानव, प्रकृति और विकास-प्रक्रिया का संतुलित समन्वय हो. मानव महत्त्वपूर्ण है, कारक है, योजक है. मानव की समष्टिगत इकाई राष्ट्र है, एक या एकाधिक भाषा में राष्ट्र का राज प्रशासन नियमन और परिपालन सेवाओं और पारस्परिक मेल-जोल को सुदृढ़ करता है. मुण्डे मुण्डे मतिः भिन्नः. कोस-कोस पर बदले बोली. विविधता में एकता भारत की विशेषता है.

> *२०वीं सदी से प्रारंभ में १०,००० विश्व भाषाएं जीवित थी, सदी के अंत तक लगभग ६,७०० विश्व भाषाएं बच सकीं. प्रति वर्ष २ प्रतिशत विश्व भाषाओं का लोप होता जा रहा है.*

भारत में करीब १६५० बोलियां हैं, २२ संविधान स्वीकृत भाषाएं है. देवनागरी लिपि में हिन्दी राजभाषा (Official Language) है. राजभाषा अधिनियम १९६३ में संसद में पारित हुआ. अनुच्छेद ३(३) के अनुसार केन्द्रीय सरकार के सभी पत्र, प्रपत्र, हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में होंगे. १९७६ में राजभाषा नियमों के अनुपालन दायित्व को स्पष्ट कर दिया गया. १८ जनवरी १९६८ को

राजभाषा अधिनियम संशोधन के अनुसार संविधान की धारा ३४३ के अन्तर्गत हिन्दी संघ की राजभाषा है, धारा ३५१ के अन्तर्गत केन्द्र सरकार (संघ) का दायित्व है कि हिन्दी भाषा का प्रचार-प्रसार करे और इसका इस प्रकार विकास करे कि भारत की मिली-जुली संस्कृति के सभी अवयवों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सकें. ४ फरवरी २०११ को

> *बहुभाषी देश में 'संज्ञानिकी' से राज प्रशासन और जन सेवाओं को अधिक प्रभावी और लोकप्रिय बनाया जा सकता है. सभी को साथ लेकर विकासोन्मुखी योजनाएं चलाई जा सकती हैं. संवाद एवं सेवाओं की प्रशासनिक भाषा को 'राजभाषा' कह सकते हैं. बहुभाषी देश और राजभाषा के कई उदाहरण हैं.*

राजभाषा विभाग ने भारत सरकार के सभी सचिवों को हिन्दी अधिकारियों की नियुक्ति, कार्य सुविधा, ट्रेनिंग और विभाग की वैबसाइट को द्विभाषिक और अद्यतन करने के संबंध में लिखा. अनिवार्यता और हिन्दी में विभाग विषयक संगोष्ठियों के आयोजन के बारे में लिखा. हिन्दी व्यवहार की सघनता के आधार पर हिन्दी व्यवहार के लिए भारत के २८ राज्यों और ७ संघ शासित राज्य क्षेत्रों को तीन वर्गों में बाँटा गया.

२१वीं सदी में ज्ञान परक समाज का उदय : द्वितीय विश्व युद्ध के बाद कई देश स्वतंत्र हुए. टैक्नॉलोजी के सतत विकास से १९वीं सदी में औद्योगिक क्रांति हुई. मशीनों ने मानव बाहु शक्ति को सीमा से परे कई गुणा विस्तार दिया. २०वीं सदी के उत्तरार्ध में कम्प्यूटर के अविष्कार से सूचना क्रांति का सूत्रपात हुआ. गणना मशीनों ने मानव की गणना एवं स्मृति क्षमता को कई गुणा बढ़ा दिया. २१वीं सदी में मानव मस्तिष्क की जटिलता को वैज्ञानिक सुलझाने लगे हैं. भाषा और भाव के व्यवहार में निपुणता प्राप्त बुद्धिपरक मशीनों के विकास पर शोध हो रहे हैं. संचार और ज्ञान प्रौद्योगिकी का सुन्दर समन्वय होने से ज्ञान-परक समाज का अभ्युदय होने लगा है. इस प्रौद्योगिकी को 'संज्ञानिकी' कह सकते हैं. प्रौद्योगिकी की गति, प्रबल प्रभावकारिता और प्रसार से विश्व समाज प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके. २०वीं सदी से प्रारंभ में १०,००० विश्व भाषाएं जीवित थी, सदी के अंत तक लगभग ६,७०० विश्व भाषाएं बच सकीं. प्रति वर्ष २ प्रतिशत विश्व भाषाओं का लोप होता जा रहा है. भाषा के लोप से लोक संस्कृति और परंपरागत ज्ञान का विलोप होता है. संज्ञानिकी युग में इंटरनेट पर ज्ञान की उपलब्धि, और ज्ञान-अनुवाद सुलभ होने से अपने भाषा-संस्कृति के वैशिष्ट्ययुत अस्मिता को संपुष्ट करना संभव है.

बहुभाषी देश में 'संज्ञानिकी' से राज प्रशासन और जन सेवाओं को अधिक प्रभावी और लोकप्रिय बनाया जा सकता है. सभी को साथ लेकर विकासोन्मुखी योजनाएं चलाई जा सकती हैं. संवाद एवं सेवाओं की प्रशासनिक भाषा को 'राजभाषा' कह सकते हैं. बहुभाषी देश और राजभाषा के कई उदाहरण हैं. वहाँ राजभाषा नीति फ्रेमवर्क (Official Language Framework) बनाए गए है जिनमें अनुपालन दायित्व, मूल्यांकन, चेतावनी दिए जाने का प्रावधान है. मुख्य उद्देश्य है आम लोगों को गुणवत्तापूर्ण सेवाएं सभी भाषाओं में सुलभ हों और रोजगार के अवसर समान हों. बहुभाषिकता के कई उदाहरण है-

भारत : एक देश, २२ संविधान स्वीकृत भाषाएं, १ राजभाषा.

साउथ अफ्रीका : एक देश, ११ राजभाषाएं.

कनाडा : एक देश, २ राजभाषाएं.

यूरोपीय संघ : २७ देशों का संघ, २३ स्वीकृत राजभाषाएं; काम-काज की ३ राजभाषाएं.

राजभाषा हिन्दी का बदलता स्वरूप : हिन्दी में भी बदलाव आते रहे हैं. शिक्षा, राजनीति और टैक्नोलॉजी से राजभाषा का स्वरूप बदलता है. हिन्दी त्रिवेणी है. इसमें संस्कृत, उर्दू और अंग्रेजी के शब्द कम या अधिक मिलते हैं, ये सब मान्य हैं. १९४७-१९७५ तक अधिकतर हिन्दी माध्यम से शिक्षा थी, संस्कृतजनित शब्दों का भी प्रयोग होता रहा. तकनीकी शब्दों का संग्रह नगण्य था. १९७५-१९८५ उर्दू के शब्दों का बाहुल्य दिखाई देता है और १९८५-२०१० में अंग्रेजी शब्दों का बाहुल्य दिखने लगा. २०१० से शब्द प्रकार गौण हो गए और भाषा की संस्कृति का लोप. जो सूझे वो लिख डालो. वेब पर हिन्दी का प्रयोग ब्लॉग, चैट, एस.एम.एस., ई-मेल, वेब साइट कंटेट, फाइल के रूप में बढ़ने लगा है. अंग्रेजी के बढ़ते प्रभाव से हिन्दी भाषा मिलीजुली

भाषा बनती जा रही है. दूरदर्शन और अखबारों में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग बाहुल्य है, शहरवालों को शायद समझ आवें, लेकिन गांव वालों को इनके अर्थ को समझना मुश्किल है. अखबारों में ही देखिए, गांव वाले अथवा शहरों में भी कम पढ़े लिखे लोग इन शब्दों को कैसे समझेंगे - सीईओ, कोड ऑफ कंडक्ट, जॉय रीइडिंग, सर्वर, कंस्यूमर, बेस्ड, यूथ, जनरेशन, डीयू, इकनॉमिक ग्रोथ, एन.सी.टी.सी, मॉक ड्रिल, मेनस्ट्रीम, गैंगरेप, इत्यादि ढेर सारे शब्द मिलेंगे. अपेक्षा की जाती है कि हिन्दी के अखबार शहर और गांव को जोड़ें. राजभाषा हिन्दी संक्रमण काल में है.

राजभाषा का स्वरूप क्या हो? भाषा सरल हो, छोटे वाक्य हों. अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग बॉस की सुविधा के लिए हो, लेकिन इसका भाव विस्तार हिन्दी में लिख देना उचित होगा. अनुवाद की आवश्यकता ९०-१०० प्रतिशत है, लेकिन इसकी उपादेयता शायद ५-१० प्रतिशत से भी कम होगी. विचार करें, ऐसा क्यों होता है? अनुवाद रस्म अदायगी बनता जा रहा है, इसका मूल्यांकन नहीं होता, विषय विशेषज्ञ की इसमें कोई भूमिका नहीं होती. अभी केवल हिन्दी अधिकारी ही अनुवाद करता है. यह एक-व्यक्ति अनुवाद है. आवश्यक है कार्यालय प्रशासन यह माने और आदेश दे कि अनुवाद हिन्दी अधिकारी और विषय विशेषज्ञों की टीम करे और अनुवाद की सुबोधता, सरसता और विषय प्रतिपादन की शुद्धता का दायित्व पूरी टीम का हो. प्रतिवर्ष कुछ रेंडम (यादृच्छिक क्रम में) अनुपाठ नमूने का मूल्यांकन भी कराया जाए. कम्प्यूटर शब्द कोश, समांतर कोश, वाक्यांश कोश, श्रेष्ठ टिप्पणियां, अनुवादक, वर्तनी चैकर, व्याकरण चैकर, विविध फोंट, फोंट कर्न्वटर आदि वेब पर मिलने लगे हैं; सरकारी कम, निजी मुफ्त विपुल लेकिन एकरूपता नहीं. पत्र व्यवहार यथासंभव ई-मेल से करें. संक्रमण काल में हिन्दी अधिकारी और प्रशासन अध्यक्ष को हिन्दी-व्यवहार को मिलकर बढ़ावा देना चाहिए, अंग्रेजी शब्दों के भाव विस्तार का सहारा लेकर प्रस्तुति को सरल, सुबोध बनाना चाहिए. विज्ञान परक लेखन/टिप्पणी में यह नितांत आवश्यक है. टीम अनुवाद को अनिवार्य प्रक्रिया बनाया जाए. राजभाषा हिन्दी का प्रयोग लोक हित में है, संवैधानिक आवश्यकता है, प्रत्येक कार्मिक का समान दायित्व है. संक्रमण काल में लक्ष्य हो कि २०१५ तक ८० प्रतिशत उच्च अधिकारी हिन्दी में स्वयं लिखें और टीम अनुवाद में सक्रिय भाग लें. अनुवाद मूल्यांकन अनिवार्य हो. राजभाषा हिन्दी लचीली, प्रयोग-सरल भाषा है. देवनागरी लिपि ध्वन्यात्मक एवं वैज्ञानिक लिपि है. संक्रमण काल में शब्द की अपेक्षा ज्ञान सामग्री का संप्रेषण अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है. सभी ज्ञान कर्मी मिलकर इस

राजभाषा हिन्दी का प्रयोग लोक हित में है, संवैधानिक आवश्यकता है, प्रत्येक कार्मिक का समान दायित्व है. संक्रमण काल में लक्ष्य हो कि २०१५ तक ८० प्रतिशत उच्च अधिकारी हिन्दी में स्वयं लिखें और टीम अनुवाद में सक्रिय भाग लें. अनुवाद मूल्यांकन अनिवार्य हो.

दिशा में प्रयत्न करें; इस कार्य को अकेले हिन्दी अधिकारी पर न छोड़ा जाए.

२१ वीं सदी में विकास, गति और सामाजिक एवं पर्यावरण संवेदनशीलता प्रमुख विषय हैं. सर्व शिक्षा और कार्य कौशल से गतिमय विकास संभव है. राजभाषा हिन्दी का स्वरूप सरल हो और वैज्ञानिक संकल्पनाओं की अभिव्यक्ति में सक्षम हो.

विशिष्ट विषय क्षेत्रों की शब्दावलियाँ प्रयोग साध्य हों और इनके प्रयोग की समीक्षा होती रहे, शब्दावली संकल्पना सहायक बने, इनके अनिवार्य प्रयोग की हठधर्मिता न हो. सूचना प्रौद्योगिकी, वेब सर्वव्यापक सर्वसहायक बनते जा रहे हैं. तकनीकी ओपेन डोमेन में उपलब्ध हो, व्यावसायीकरण के लिए भी मुक्त हो, मुफ्त हो. स्कूली, वोकेशनल, उच्च शिक्षा में हिन्दी को प्रयोगात्मक रूप में अनिवार्यतः पढ़ाया जाए. उच्च शिक्षा, विशेषतः तकनीकी और स्वास्थ्य शिक्षा में इंग्लिश में संवाद दक्षता पर बल है, इसके साथ हिन्दी में भी संवाद दक्षता पर बल दिया जाए, क्योंकि ये ग्रेड्युएट देश की बड़ी जनसंख्या को प्रभावित करते हैं, उन्हें सेवाएं जुटाते हैं, उनसे फीडबैक लेकर सेवाओं में उत्तरोत्तर सुधार करते हैं. इस आलोचना में सच हो सकता है कि राजनीतिक इच्छा प्रबल नहीं है, लेकिन विरोध भी नहीं है, प्रोजेक्ट फंडिंग की भी कमी नहीं है. दायित्व प्रबुद्ध वर्ग का है, शिक्षण संस्थानों और विश्व विद्यालयों का है. राजभाषा हिन्दी के व्यवहार का गुण-दोष तथा संभावित लाभ-हानि विश्लेषण ५ प्रभाव बिन्दुओं पर कर सकते हैं - संवाद एवं सेवाएं, विज्ञान-तकनीकी एवं इन्नोवेशन, उद्यमिता एवं रोजगार, संस्कृति संरक्षा, गवर्नेंस एवं न्याय. विश्लेषण रिपोर्ट और सर्वे के परिणामों की गूँज संसद में होने पर नीति अनुपालन प्रभावी बनाया जा सकेगा. आम लोगों की भागेदारी से सतत विकास पथ प्रशस्त होगा.■

बबीता वाधवानी
शिक्षा - एम.काम., एम.एड., दस वर्षों तक विभिन्न विद्यालयों में अध्यापन. सम्प्रति - कम्प्यूटर शिक्षा के प्रसार में संलग्न.
http://babitawadhwani.blogspot.com
सम्पर्क : ३१/६२/६ वरूण पथ. मानसरोवर, जयपुर. ईमेल : babita1wadhwani@yahoo.co.in

मुद्दा

बच्चे क्या बोल रहे हैं?

बच्चों को भाषा का पूर्ण ज्ञान घर व विद्यालय के साझे माहौल से होता है. बच्चे घर में हिन्दी में बोलते हैं और विद्यालय में अंग्रेजी में. घर में हिन्दी की किताबें पढ़ते हैं तो विद्यालय में अंग्रेजी में लिखी किताबें. बच्चों के बाल मन पर इन बातों का असर पड़ता है ये बात हम बड़े भूल रहे हैं.

एक बड़ी भूल ये भी हो रही है हमसे कि हम अंग्रेजी माध्यम में भौतिक सम्पत्तियों की तरफ ज्यादा ध्यान दे रहे हैं. हम वहाँ भी ईमानदार नहीं हैं शिक्षा के लिए. शिक्षा के लिए प्रचलित है कि शिक्षा मातृभाषा में दी जाये तो बालक जल्दी सीखता है. अतः हमें भी बच्चे की प्रारम्भिक शिक्षा हिन्दी में ही स्वाभिमान से देनी चाहिए. शहरों के साथ गाँव में भी अंग्रेजी माध्यम विद्यालय के नाम पर ठगे जाने वाले माता-पिता को जागरूक होना होगा. एक पूरी पीढ़ी ठगी जा चुकी है - अब वे इस स्तर पर हैं कि वे न तो बच्चों को अंग्रेजी माध्यम विद्यालय से निकाल सकते हैं न ही वे अपने आप को लुटने से बचा सकते हैं, क्योंकि बच्चा जब एक बार विदेशी भाषा की तरफ मुड़ता है तो वो शीघ्रता से मातृभाषाा भी नहीं अपना पाता. उसके लिए धैर्य की जरूरत होती है.

सबसे पहले हमें बच्चों के बाल मन को समझाना होगा कि अपने देश में हिन्दी भाषा का ज्ञान गर्व की बात है और ये डर निकालना होगा कि यदि वे सिर्फ हिन्दी भाषा का ज्ञान रखते हैं तो दोयम दर्जे के हैं. बात समझने की ये है कि अंग्रेजी भाषा का ज्ञान उन्हें विदेशों में सम्पर्क करने व वहाँ ऊँचाइयाँ छूने में मदद करता है.

दूसरा बच्चों को दोनों माध्यम -हिन्दी व अंग्रेजी की किताबों से सम्पर्क कराना होगा कि किताबों में एक ही बात लिखी होती है माध्यम कोई भी हो सकता है हिन्दी या अंग्रेजी. कुछ बातें उन्हें हिन्दी में ज्यादा अच्छे से समझ में आयेगी तो हो सकता है कुछ अंग्रेजी में. विकल्प वो दोनो का खुला रखे.

मैं इस बात पर जोर देना चाहूँगी कि भारत देश में हिन्दी माध्यम विद्यालय खुलने चाहिए व आज के प्रतियोगी युग में उनमें अंग्रेजी भाषा व कम्प्यूटर का ज्ञान अच्छे से कराया जाए तो हम प्रतियोगिता में जीते हुए प्रतिभागी ही है.

मेरी अपनी बच्ची अंग्रेजी माध्यम में पढ़ती है. परन्तु मैं उस दिन से सतर्क हो चुकी जब बचपन में उसने मुझसे अपनी अंकतालिका ये कहते हुए छीन ली थी कि आप हिन्दी में

> *हम बड़े ही बच्चों का मार्गदर्शन करके हिन्दी को मान दिला सकते हैं. अतः सबसे पहले घर में हिन्दी को मान दिलाना है फिर हिन्दी विद्यालयों की तरफ लौट कर बच्चों के द्वन्द्व को खत्म करना है और हिन्दी को मान दिलाना है.*

> हर रात दो कहानियाँ पढ़ते एक हिन्दी की और एक अंग्रेजी की. धीरे-धीरे उसने समझा कि माध्यम हिन्दी या अंग्रेजी हो सकता है पर शिक्षा दोनों में समान मिल रही है.

हस्ताक्षर करती हो. मैं अपनी अंकतालिका में आपसे हस्ताक्षर नहीं करवाऊँगी. बड़ी दुविधा वाला दिन था मेरे लिए कि मैं उसका तुरन्त विद्यालय बदल दूं या धीरज से काम लू. विद्यालय बदलने मात्र से ही वह हिन्दी का मान करना नहीं सीख पाती.

मैंने हिन्दी व अंग्रेजी की कहानियों की वो किताबें खरीदी जिनमें कहानियाँ एक जैसी थी. कुछ अलग कहानियों वाली. हर रात दो कहानियाँ पढ़ते एक हिन्दी की और एक अंग्रेजी की. धीरे-धीरे उसने समझा कि माध्यम हिन्दी या अंग्रेजी हो सकता है पर शिक्षा दोनों में समान मिल रही है.

मेरी बेटी के स्कूल की सामाजिक अध्ययन पुस्तक में हिटलर के बारे में पढ़ाया जा रहा था. उसे और विस्तृत जानकारी चाहिये थी. उन्ही दिनों दोस्त से हिटलर पर हिन्दी में लिखी किताब मुझे मिली थी, मैंने सही मौका जाना और अपनी बच्ची को वह पुस्तक दी. उसे बड़ा अच्छा लगा पढ़ कर और उसका कथन था - मम्मी, किताब बहुत अच्छी है.

आज जब वो नौंवी कक्षा में है तो उसने अतिरिक्त किताब चाही गणित विषय की. मैंने मौका नहीं गँवाया और राजस्थान बोर्ड की गणित विषय की किताब दी. पहले वह थोड़ी परेशान हुयी कि मुझे नहीं समझ आयेगी. पर मुख्य शब्दों को अंग्रेजी में रूपान्तरित कर दिया. साल बीतने को है एक सकारात्मक पक्ष मैंने देखा कि वो गणित से डरती थी कि मैं कभी बहुत अच्छी नहीं हो पाऊँगी गणित मे. पर इसके विपरीत उसका इस वर्ष गणित में बहुत अच्छा परिणाम आया है. अच्छा लगता है कि अब वो हिन्दी की किताबें भी बड़े आदर से हाथ में उठाती है.

हम बड़े ही बच्चों का मार्गदर्शन करके हिन्दी को मान दिला सकते हैं. अतः सबसे पहले घर में हिन्दी को मान दिलाना है फिर हिन्दी विद्यालयों की तरफ लौट कर बच्चों के द्वन्द्व को खत्म करना है और हिन्दी को मान दिलाना है.■

60 MILLION
CHILDREN IN INDIA
have no means to go to school

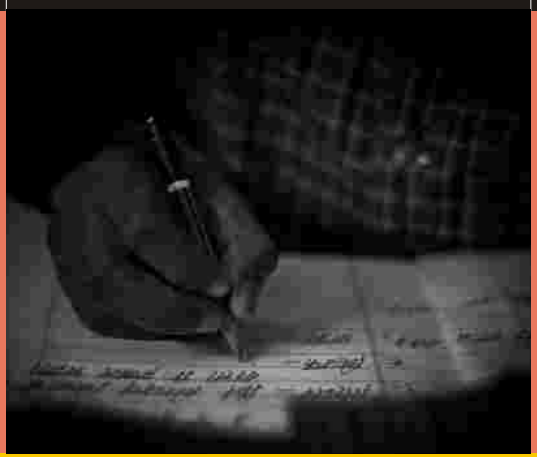

Contribute just Rs. 2750*
and send one child to school
for a whole year

Central & General Query
info@smilefoundationindia.org
http://www.smilefoundationindia.org/contactus.htm

गर्भनाल द्वारा जनहित में जारी

मधु अरोड़ा
४ जनवरी १९५८ को जन्म. शिक्षा : एम. ए., सामाजिक विषयों पर लेखन, कई लेखकों के साक्षात्कार प्रकाशित एवं आकाशवाणी से प्रसारित. रेडियो पर कई परिचर्चाओं में हिस्सेदारी, मंचन से भी जुड़ी हैं. सम्प्रति - एक सरकारी संस्थान में कार्यरत.
संपर्क - एच-१/१०१, रिद्धि गार्डन्स, फिल्म सिटी रोड, मालाड (पूर्व), मुंबई-४०००९७
ईमेल : freelancer41@indiatimes.com मोबाईल- ९८३३९५९२१६

प्रख्यात साहित्यकार डॉ. जगदम्बाप्रसाद दीक्षित से मधु अरोड़ा की बातचीत

मधु : सर, आपके लिये लेखन क्या मायने रखता है ?

डॉ. जगदम्बाप्रसाद दीक्षित : लेखन जो है, वह महत्वपूर्ण दो तरह से हो जाता है, दो जरूरतें पूरी करता है - अपने-आपको शेयर करने की इच्छा. लेखक में यह इच्छा ज्यादा होती है, कई स्तरों पर होती है - जैसे भावनात्मक, कलात्मक स्तर पर. अपने व्यक्तित्व को सबके साथ बाँट रहे हैं, इसमें एक तरह की संतुष्टि है. जो लोग स्वान्तःसुखाय हैं, उसमें मैं शामिल हूँ. इसमें स्व ही काफी व्यापक है. मैं खुद को बाँटता हूँ तो सिर्फ मेरा सुख-दुख मेरा ही नहीं, सबका है. यह बाँटना ही लेखन का अर्थ है. मेरे आस-पास जो समाज, उसकी व्यवस्था है, उसे मैं काफी अन्यायपूर्ण और विषम मानता हूँ. मैं खुद जिन हालातों में पला-बढ़ा, उसमें यह रहा कि मैं खुद अन्याय का शिकार हूँ. लिखना-अन्यायपूर्ण व्यवस्था के खिलाफ एक लड़ाई लड़ना है. उस पर मैं उंगली रखता हूँ, expose करता हूँ. ऐसे में लेखन औजार हो जाता है. लेखन मेरे लिये यही मायने रखता है.

लेखन आपके लिये प्राथमिकता है या जीवन शैली ?

लेखन जीवन-शैली है. जहाँ ज़िन्दगी में और आवश्यकताएँ हैं, लिखना भी आवश्यक है. जहाँ इतनी लड़ाई लड़ते हैं, लिखना भी लड़ाई है. यहाँ बहुत से कार्य-कलाप लेकर चलते हैं, कलात्मक अभिव्यक्तियों के रूप गढ़ते हैं, वहाँ लिखना भी एक हिस्सा है. मैं यह नहीं कहूँगा कि लेखन को प्राथमिकता देता हूँ, पर कलात्मकता के अनेक रूप हैं जिन्हें मैं पसन्द करता हूँ. दृश्य विधाओं - नाटक, सिनेमा में भी अभिव्यक्ति का बहुत बड़ा स्थान है. वैचारिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक, आर्थिक चिन्तन, विश्लेषण मेरे जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं. साहित्य लेखन की प्राथमिकता नहीं होती. वह इन्हीं गतिविधियों में से एक है. लेखन मेरी जीवन-शैली है, यह नहीं कहूँगा, बल्कि यह मेरे जीवन का हिस्सा है.

आप एक लेखक को आम आदमी से अलग मानते हैं ?

किसी हद तक थोड़ा भिन्न है, पर आम आदमी से ऊपर है, ऐसा मैं नहीं मानता. किसी ने कहा भी है कि मोची जो जूता बनाता है, एक मज़दूर जो फैक्ट्री में काम करता है, किसान खेत जोतता है और एक आदमी जो रिक्शा चलाता है, वह उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना लेखक का लेखन है बल्कि ऐसे लोगों को मैं साहित्यकारों से बेहतर मानता हूं. अग़र संभव हो तो मैं ऐसी व्यवस्था चाहूंगा कि हर

लिखना, अन्यायपूर्ण व्यवस्था के खिलाफ एक लड़ाई लड़ना है

डॉ. जगदम्बा प्रसाद दीक्षित

जन्म : १९३४, बालाघाट, मध्यप्रदेश. हिंदी में प्रकाशित कृतियाँ : **उपन्यास :** मुर्दाघर, कटा हुआ आसमान, इतिवृत. 'मुर्दाघर' की गिनती हिंदी के २५ सर्वोत्तम उपन्यासों में से की जाती है. **कहानियां :** शुरुआत और अन्य कहानियां. **फ़िल्मी लेखन :** फिर तेरी कहानी याद आई, सर, जानम, दीक्षा, नाराज़, नाजायज़, ज़हर, कलियुग, क्रिमिनल. **फिल्मों में अभिनय :** दूर की आवाज़, दीक्षा, ये नजदीकियां, गिरवी.

साहित्यकार से, ख़ासतौर से कवियों से साल में कुछ महीने फैक्टरियों में काम करवाया जाये, खेतों में जुताई-बुवाई करवाई जाये और रिक्शा या टैक्सी चलवाई जाये. इससे उनका लेखन बेहतर और सार्थक हो सकेगा और उनका श्रेष्ठता का झूठा दंभ ख़त्म हो जायेगा. कुछ लेखकों और कवियों को देखकर लगता है कि वे आम आदमी से भी नीचे हैं. आम आदमी में आदमियत तो है. पुरस्कारों के रूप में, विदेश यात्राओं, अनुदान के रूप में भ्रष्टाचार फैल रहा है. इससे लगता है कि लेखक आम आदमी से नीचे हो गया है.

आप कहानी या उपन्यास लिखते समय किस मानसिकता से गुजरते हैं?

लेखन के लिये मानसिक स्थिति जरूरी है. आप जिस माहौल में हैं, उसमें से दूसरे माहौल में पहुँचना होता है जब तक आप उस माहौल में, चरित्र में डूब नहीं जाते, लिख नहीं सकते, मेरे लेखन में शैली, माहौल, चरित्र का महत्व होता है. जब तक मैं उस माहौल में डूब न जाऊँ, लिख नहीं सकता. लेखक लिखते समय उस माहौल को अनुभव करता है, सपने में वे पात्र आते है, मैं दुनियाँ से कट जाता हूँ. मैं मानता हूँ कि जीवन्त रचना लिखना चाहते हैं तो उस जीवन्त संसार में जाना होता है. मानसिकता के एक अनुभव संसार से गुजरना बहुत जरूरी है.

आपकी विचारधारा क्या है? क्या इसमें बदलाव आया है?

मेरी विचारधारा को क्या नाम दिया जाये? मार्क्सवाद, लेनिनवाद - जब मैंने इनकी विचारधारा को जानना चाहा तो मार्क्सवाद की किताबों को पढ़ने से पूर्व पाया कि हर दौर में ऐसे लोग होते हैं जो समान अनुभव से गुजरते हुए समान निष्कर्ष पर पहुँचते हैं. मार्क्सवाद पढ़ने के बाद लगा कि सिर्फ लोकल शोषण नहीं है, यह पूरी दुनिया में फैला है. परन्तु मूल रूप से शोषण, अत्याचार के खिलाफ लड़ रहा हूँ, यही विचारधारा है. कुछ लेखक सिर्फ किताबें पढ़कर नारे लगाने लगते हैं, मैं उससे बचा रहा हूँ. जीवन स्वयं बोल रहा है और उसे पाठक तक पहुँचाना लेनिनवाद, मार्क्सवाद है. मैंने किताबों से पढ़कर रट लिया हो ऐसा नहीं है, जीवन की गत्यात्मकता को पढ़ा है. कहा जाता है कि समाज डेमोक्रेटिक है, पर हमारे यहाँ समाज व्यवस्था में मतभेद है. यदि आप इस व्यवस्था पर उँगली रखते हैं तो समाज में दंड दिया जाता है. यदि आप उग्रम रूप से समाज के खिलाफ हैं तो आपको सज़ा दी जाती है. आपको तोड़ने की कोशिश की जाती है. कई बार लेखक टूट भी जाता है और यही समाज के चौधरी की जीत है.

> *मेरे लेखन में शैली, माहौल, चरित्र का महत्व होता है. जब तक मैं उस माहौल में डूब न जाऊँ, लिख नहीं सकता. लेखक लिखते समय उस माहौल को अनुभव करता है, सपने में वे पात्र आते है, मैं दुनियाँ से कट जाता हूँ. मैं मानता हूँ कि जीवन्त रचना लिखना चाहते हैं तो उस जीवन्त संसार में जाना होता है.*

आपके ख्याल से आप अपनी किस रचना को सर्वोत्कृष्ट मानते हैं?

यह सवाल अजीब है और कई बार पूछा भी जा चुका है. सर्वोत्कृष्ट कुछ भी नहीं है. मुझे 'मुर्दाघर' से भी कई उपन्यास अच्छे लगते हैं. तो जो पाठकों की दृष्टि में सर्वोत्कृष्ट होता है, लेखक की नज़र में नहीं. मैं अपनी तरफ से THE BEST देता हूँ. कुछ लोगों को 'कटा हुआ आसमान' पसन्द है तो कुछ को 'मुर्दाघर'. कई लोगों को वेश्याओं का जीवन interesting लगता है. 'कटा हुआ आसमान' में शहर का जो जीवन है, उसे शिद्दत से जिया है. मुझे अपनी सारी कृतियाँ अच्छी लगती हैं. जैसे माँ अपने सारे बच्चों को प्यार करती है, वैसे लेखक भी अपनी सभी कृतियों को प्यार करता है. जब लोग मुर्दाघर की तारीफ करते हैं तो मेरे अन्य पात्रों के साथ अन्याय हो जाता है. वे पात्र भी हमदर्दी के हकदार हैं.

आपका प्रसिद्ध उपन्यास 'मुर्दाघर' इस सदी के श्रेष्ठ २५ उपन्यासों में आता है, आपको कैसा लगता है?

मैंने उन २४ किताबों की सूची नहीं देखी है. एक बात स्पष्ट कर दूँ कि यदि उन २४ किताबों में वे किताबें हैं जो मुझे पसन्द नहीं है तो सोचना पड़ेगा. बात तो अच्छी लगनेवाली है, पर चुनने की कसौटी क्या है? कहीं गुटबाजी तो नहीं है? मैं उपन्यास पढ़ने का शौकीन रहा हूँ, पर आज़ादी के बाद जो उपन्यास लिखे गये हैं, अधिकतर से निराश हूँ. परन्तु यह बड़ी बात है कि उन्होंने २५ उपन्यास निकाले. मैं तो ८-१० से अधिक नहीं निकाल सकता. पता नहीं वे कौन से पंडित हैं, जिन्होंने २५ उपन्यास सर्वश्रेष्ठ घोषित किये हैं.

'मुर्दाघर' की भाषा, तेवर पर आज भी सवाल उठाये जाते हैं, इसकी कोई खास वजह?

देखिये, भाषा जो है, वह अपने आप में कुछ नहीं हैं. आप जो पात्र, माहौल लेते हैं, वे वही भाषा बोलते हैं. झोपड़पट्टी

> तुर्गनेव, चेखव, फ्लॉबियर, एमिल जोला को पढ़ता था और विह्वल हो उठता था. जो पढ़ा है, उसका अवचेतन में प्रभाव रहा है. पर मुझे यह कहने में अफसोस हो रहा है कि इन रचनाओं के बाद जो पढ़ा है उसमें किसी ने प्रभावित किया हो.

की रंडियों से जो बुलवाना है, तो वह उनकी भाषा है, मेरी नहीं है. लेखक जहाँ वर्णन कर रहा है, वहाँ गाली नहीं है. जब पात्र बोलते हैं तो वह उनकी भाषा है. उसमें मैं दखल नहीं देता. जो लोग यह बात करते हैं, वे कुलीनता का आडंबर करते हैं. निम्न वर्ग का गुस्सा, प्यार, नफरत जब तीव्रता में व्यक्त होता है तो हमारे लिये गाली है, पर उनकी तो भाषा है. गालियाँ संवादों में आती हैं, उनके लिये यह मुहावरा है, अभिजात्य के लिये भले ही गालियाँ हों. एक पार्टी में ओमप्रकाश ने कहा कि ये गालियाँ राम-नाम लगती हैं. इनके माध्यम से भोले-भाले व्यक्तियों की भावनाएँ व्यक्त होती हैं.

आपकी निगाह में आज का लेखन आपके समय के लेखन से किस प्रकार अलग है ?

ये सवाल कहीं मेरी बढ़ती उम्र की ओर संकेत देता है, लेकिन मैं यह कहना चाहूँगा कि मैंने बदलते तेवर देखे हैं. जब मैं बहुत छोटा था, जब साहित्य में रुचि पैदा हुई तो इसके लिये मेरी माँ काफी जिम्मेदार है. उस समय का लेखन एक हथियार था. नई-नई आज़ादी मिली थी, उसके लिये लोगों में संघर्ष था. हिन्दी में लेखन संघर्ष का सूचक बन गया था. १९४८/४९/५० और सन ६० तक मैंने एक खास तेवर देखा है कि लेखन सोद्देश्य है, उसकी एक दिशा तय है. कुछ ने उसे प्रगतिवादी कहा. उस समय सारे के सारे लेखक, कवि अपने लेखन में एक लड़ाई लड़ रहे थे, न्यायपूर्ण संघर्ष, बेहतरी की लड़ाई थीं, परन्तु यदि वह युग मेरा था तो यह भी मेरा है. उस लेखन में सेबोटाज रहा है. जनजीवन से संबंधित लेखन को खत्म करने के लिये जब कोई लेखन करता है तो उसे उत्तर आधुनिक आदि कहा जाता है. नई कविता, नई कहानी का उद्देश्य रहा है कि प्रगतिवादी लेखन को कंडम करें. नई कविता, कहानी का जो आन्दोलन है, उसे मैं आन्दोलन न कहकर आन्दोलन कहूँगा. इनके आते ही लक्ष्य खत्म हो गया. लक्ष्यहीनता दिशा बन गया. अब साहित्य संघर्ष नहीं रह गया. आन्दोलनवाद की हवा चल पड़ी और लेखन की दिशा ही खत्म हो गई. लेखन में बिखराव आया. यह इन आन्दोलनों के प्रणेता की जीत है. नई कविता, कहानी को राजनीति और धनाढ्य लोगों का प्रश्रय मिला. निरालाजी की कविता दिशा देती थी, पर अज्ञेयजी की नई कविता ने दिग्भ्रमित किया कि लेखन की दिशा ही नहीं होती. मेरे समय के लेखन में दिशा थी, पर आज के लेखन ने दिशा को ही तोड़ दिया. आन्दोलनवादी साहित्य शुरू हुआ और खत्म हो गया. उसके बाद का जो दौर है, उसमें साहित्य वहाँ पहुँच गया, जो आज़ादी के बाद था. जब सर्वेश्वर जैसे कवि आये, उपन्यास के क्षेत्र में महाभोज, आपका बंटी आये जो संघर्षशील धारा थी. जहाँ तक आज का सवाल है - अच्छा लेखन है पर दिशाहीन है. किसके दुख-दर्द को लाया जा रहा है, क्या कर रहा है, उसे ही पता नहीं याने कन्फ्यूजन साहित्य लिखा जा रहा है. मेरे हिसाब से इन बदलते तेवरों को मैंने देखा है.

आज के रचनाकारों में कोई रचनाकार आपको प्रभावित कर पाया है ?

लेखन से पहले मैं पढ़ता बहुत था. उस ज़माने में प्रेमचन्द, शरत्चन्द्र पसन्दीदा थे. फिर रूसी, जर्मन साहित्य पढ़ा. मैं भाव-विभोर हो जाता हूँ. तुर्गनेव, चेखव, फ्लॉबियर, एमिल जोला को पढ़ता था और विह्वल हो उठता था. जो पढ़ा है, उसका अवचेतन में प्रभाव रहा है. पर मुझे यह कहने में अफसोस हो रहा है कि इन रचनाओं के बाद जो पढ़ा है उसमें किसी ने प्रभावित किया हो. हाँ, महाभोज, आपका बंटी ने बहुत प्रभावित किया. वैसे मैंने बहुत ज्यादा पढ़ा भी नहीं है. मुझे स्वीकारोक्ति करनी चाहिये कि मैंने जो उपन्यास पढ़े हैं, चार पेज पढ़कर छोड़ दिये हैं. उनमें पठनीयता नहीं है. एक प्रकार का नकली लेखन है, जिसे मॉडल बनाकर पेश किया जा रहा है. हिन्दी लेखन चाहे उपन्यास हो या कविता, एक षड़यंत्र का शिकार हो गया है.

'मोहब्बत, गन्दगी और ज़िन्दगी' आपकी बेहतरीन प्रेम कहानियाँ हैं, प्रेम आपके लिये ज़िन्दगी में क्या मायने रखता है ?

प्रेम बहुत मायने रखता है. यह कहाँ है इसका पता लगा रहा हूँ. मुझे जहाँ तक प्रेम का संबंध है तो मुझे एक ही शब्द याद आता है - माँ. खास तौर से वह प्रेम जो अहेतु हो. प्रेम कहीं आदमी को ऊपर उठा देता है. यतीम लड़के को एक रात वेश्या के साथ रहने पर उसे उस वेश्या से प्यार हो जाता है और वह बच्चा उस वेश्या के पति से लड़ पड़ता है. प्रेम बहुत बड़ी चीज है. इसकी ताकत बहुत बड़ी है, पर आज फिल्मों में जो दिखाया जा रहा है वह प्रेम कतई नहीं है. आज पुरुष के

> मुंबई शहर में कुछ लेखक संघ हैं, इनमें हल्की सी संकीर्णता नज़र आती है. ये संगठन आम तौर पर उन्हीं साहित्यकारों को महत्व देते हैं जो उनकी विचारधारा से पूरी तरह सहमत हों. जरूरी है कि असहमति का अनादर न किया जाये और एक समान मत रखनेवाले कुछ थोड़े से लोगों की गुटबन्दी से बचा जाये.

अन्दर एक और पुरुष तथा नारी के अन्दर एक और नारी है - याने प्रेम का जो रहस्यवाद है, बेकार है. प्रेम को ग्लोरिफाई न करें. देवदास इस तरह का उदाहरण है. हमारे यहाँ प्रेम के नाम पर पाखंड है. प्रेम के नाम पर जो रहस्यवाद आ रहा है, उसकी भर्त्सना की जानी चाहिये.

आपकी कहानियों में निम्न वर्ग, वेश्याएँ, गरीब वर्ग ज्यादा हैं, इसकी कोई खास वजह ?

इसकी एक वजह तो यह है कि मैं खुद गरीब हूँ. पहले ज्यादा था, अब कम हूँ. जो सम्पन्न लोग हैं, उनसे दिक्कत होती है. उनमें गहराई नज़र नहीं आती. पैसे वाले पात्रों में गुण नहीं देखे. निम्न वर्ग के लोग जो कठोर संघर्ष करते हैं, उनमें, वेश्याओं में गुण दिखाई देते हैं. आप अगर उच्च वर्ग के बारे में लिखेंगे तो स्त्री-पुरुष का रोमांस, प्रेम संबंध लिखेंगे. वहाँ भ्रष्टाचार है. पर उनका दावा होता है सच्चे प्यार का. तो यह धोखा है. इसे लिखना कोई मायने नहीं रखता.

आप स्त्री-पुरुष की दोस्ती को किस रूप में देखते हैं ?

प्रकृति ने स्त्री-पुरुष को बनाया है, प्रजनन के लिये बनाया है, ताकि जो प्रजाति है, वह चलती रहे. प्रकृति में प्रेम नहीं है, उसमें प्रजनन है, प्रजाति को बढ़ाने की प्रेरणा है. किसी भी प्राणी में देख लीजिये - माँ की भूमिका होती है, पर पिता का कोई रोल नहीं है. हम मनुष्य हैं, अतः हमारे अन्दर एक भावनात्मक लगाव उत्पन्न होता है. हम भौतिक लेवल से ऊपर बढ़ गये हैं. मेरे हिसाब से स्त्री-पुरुष की दोस्ती में यौनाकर्षण रहेगा. यह बात अलग है कि विवेक और उचित-अनुचित की सीमा को रखेंगे. मैं जब महिला या पुरुष से बात करूंगा तो मेरे रवैये में फ़र्क होगा. सुपर ईगो की वजह से अनुचित बात मन में नहीं आने देते. स्त्री-पुरुष की बात तथा पुरुष-पुरुष की बात और है पर स्त्री-पुरुष की दोस्ती में आकर्षण होगा ही. अधिकांश पुरुषों का दृष्टिकोण सेक्स का होता है.

आपके फिल्मी दुनियाँ से रिश्ते रहे हैं, वहाँ के आपके अनुभव कैसे रहे ?

फिल्म का माध्यम तो पसन्द है क्योंकि वह व्यापक है और इस अर्थ में व्यापक है कि जन-साधारण तक पहुँचने में समर्थ है. यह लोक-माध्यम है, इसमें लोक-विधाओं का समावेश है. इस लाइन की मेरी सबसे बड़ी समस्या रही है कि यह लाइन आँख के अंधे गाँठ के पूरे वालों की है. उन्हें किसी विधा की समझ नहीं है. यहाँ तक कि फिल्म से पैसा कमाने की तमीज़ भी नहीं है. ५०-६० के दशक का दौर बहुत अच्छा था. वे इस माध्यम को समझते थे. जन-साधारण तक गुणवत्ता कैसे पहुँचाई जाये, इसकी लड़ाई लड़ रहे थे. 'प्यासा' फिल्म साहिर की शायरी पर हिट फिल्म बनी. 'झनक-झनक पायल बाजे' नृत्य पर बनी हिट फिल्म. बिमल राय जो लगातार साहित्यिक कृतियों पर फिल्म बनाते रहे. राजकपूर ने अपने समय की सार्थक फिल्में बनाईं, पर आज के दौर की फिल्में दिवालियेपन का शिकार हैं. यह एक निर्माताओं का शोशा छोड़ा जाता है कि अच्छी कहानियाँ नहीं हैं. जब लेखक जाता है तो उनके पास कहानी सुनने का वक्त नहीं है, इच्छा नहीं है. अंगेजी फिल्मों को कॉपी कर लेते हैं पर ये अच्छे कॉपी मास्टर भी नहीं हैं. मुझ जैसे आदमी को इस माहौल में घुटन होती है. उपन्यास लिख सकता हूँ पर फिल्म नहीं बना सकता. अपनी कहानियाँ लेकर चुपचाप बैठा रहता हूँ. यदि मुझे कहने दें तो मुझे फिल्म की समझ है. इसके बाद भी अगर मैं इन ज़रूरतों का ख्याल रखते हुए भावनाओं के स्तर पर बात कहने की कोशिश करता हूँ तो लोग सुनने को तैयार ही नहीं हैं. मुझे कई बार अपना जीवन निरर्थक लगने लगता है. मेरे इस लाइन के अनुभव बहुत अच्छे नहीं हैं.

आप मुंबई की साहित्यिक राजनीति पर क्या कहना चाहेंगे ?

यहाँ पर साहित्यिक गतिविधियाँ हैं वे हिन्दी अकादमी से काफी कुछ जुड़ी है. होना यह चाहिये कि अकादमी राजनीति से निरपेक्ष होकर साहित्यिक गतिविधियों का आयोजन करे, लेकिन ऐसा होता नहीं है. मेरी अब तक यह समझ में नहीं आया कि महाराष्ट्र सरकार के बदलते ही साहित्य अकादमी क्यों बदल जाती है ? जब भाजपा और शिवसेना की सरकार थी तो इन राजनीतिक दलों के आदमी चलाते थे, लेकिन जैसे ही सरकार बदली तो अकादमी के इन पदाधिकारियों ने इस्तीफा दे दिया. उस समय व्यक्तिगत बातचीत एकैडमी के तत्कालीन प्रमुख से हुई. मैंने उस समय उनसे कहा कि ये क्यों जरूरी है कि आपकी सरकार बदल गई है तो आप अकादमी से इस्तीफा दे दें. उन्होंने कहा कि उनकी पार्टी का यही आदेश

है. अब कॉंग्रेस की सरकार बनी तो कॉंग्रेस के समर्थक अकादमी के सर्वेसर्वा हो गये. साहित्य अकादमी का राजनीति से यह रिश्ता एक अजीब सी बात है. होना तो यह चाहिये कि साहित्य अकादमी दलगत राजनीति से निरपेक्ष होकर संचालित की जाये लेकिन यह मुंबई की साहित्यिक राजनीति ही है, साहित्य अकादमी पूरी तरह दलगत राजनीति से जुड़ी हुई है.

मुंबई में अनेक प्रकार के साहित्यिक पुरस्कार हर साल दिये जाते हैं. किस आधार पर दिये जाते हैं, यह स्पष्ट नहीं है. कुछ ऐसी धारणा बनती है कि व्यक्तिगत संबंधों के आधार पर ये पुरस्कार दिये जाते हैं. अगर यह धारणा सही है तो यह साहित्य की राजनीति है. इससे बचना जरूरी है. मुंबई शहर में सुरेन्द्र वर्मा, डॉ. आनन्द कुमार वगैरह ऐसे साहित्यकार हैं जिनका साहित्यिक योगदान उन लोगों से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है जिन्हें अनेक प्रकार से पुरस्कृत किया जाता है. जरूरी है कि ये सारे पुरस्कार व्यक्तिगत संबंधों के आधार पर न दिये जायें, साहित्यिक गुणवत्ता को मान्यता देने और बढ़ाने के लिये दिये जायें.

मुंबई शहर में कुछ लेखक संघ हैं, इनमें हल्की सी संकीर्णता नज़र आती है. ये संगठन आम तौर पर उन्हीं साहित्यकारों को महत्व देते हैं जो उनकी विचारधारा से पूरी तरह सहमत हों. जरूरी है कि असहमति का अनादर न किया जाये और एक समान मत रखनेवाले कुछ थोड़े से लोगों की गुटबन्दी से बचा जाये.

मुंबई का एक ऐसा साहित्यिक वर्ग है जो कुछ सरकारी और अर्ध सरकारी संस्थानों में हिन्दी आदि का पदभार ग्रहण किये हुए है. एक ऐसी धारणा बनती है कि हिन्दी अधिकारी के रूप में जो अधिकार इन्हें दिये गये हैं, वे उनका दुरुपयोग कर अपने आपको और अपने मित्रों को साहित्यिक क्षेत्र में प्रक्षेपित करने का प्रयास करते हैं. ये लोग प्रकाशकों से सीधी सौदेबाजी करते हैं और इस सौदेबाजी के दौरान अपनी कुछ ऐसी पुस्तकें प्रकाशित करवाते हैं जिनका कोई महत्व नहीं है. इन्हें देशभर में मुफ्त टेलीफोन करने की सुविधा भी मिली, उसका दुरुपयोग ये लोग एक साहित्य गुटबाजी के रूप में करते हैं ये रिवाज सा बन गया है कि पहले किसी प्रकाशक को पटाकर अपनी पुस्तक छपवाओ फिर खुद ही उस पुस्तक पर गोष्ठी करवाओ. फिर उस गोष्ठी को समाचार पत्र-पत्रिकाओं में छपवाओ. यह एक प्रकार का साहित्यिक अनाचार है. इससे बचने की ज़रूरत है.

कुछ और लोग हैं जो थोक के भाव से लेखन करते हैं और अपने लेखन पर दूसरों से पुस्तकें लिखवाते हैं और जब ये ६०-७० साल के हो जाते हैं तो खुद ही अपनी षष्ठी-पूर्ति वगैरह आयोजित करवाते हैं. यह भी एक अजीब सी बात है पर है ये मुंबई के साहित्य का एक आकलन.

आप नई कहानी, नई कविता के बारे में क्या सोचते हैं ?

मेरे विचार से नई कहानी, नई कविता जो शब्द हैं, इसका कोई चरित्र नहीं है. गत पचास वर्षों से नई कहानी, नई कविता अभी तक नई बनी हुई है. याने पचास वर्ष पुरानी होने के बावज़ूद नई बनी हुई है. देखो, जब हम किसी रुझान को परिभाषित करते हैं तो उसकी चारित्रिक विशेषता को सामने लाते हैं. जैसे यथार्थवाद, छायावाद ये एक अभिव्यक्ति के चरित्र की बात करते हैं. उसका एक चरित्र होता है. नई कहानी नाम की कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिसे परिभाषित किया जा सके. चाहे नामवर सिंह हों या राजेन्द्र यादव, इनमें से कोई भी इसे परिभाषित नहीं कर सकता.

नई कहानी आंदोलन को आप किस रूप में देखते हैं ?

नई कहानी के कहानीकार उस युग के प्रतिनिधि कहानीकार नहीं हैं. नई कहानी आंदोलन गुटबाजी के तौर पर आया है और यह एक राजनीति है. पहले वास्तविक जीवन में जो आर्थिक पक्ष, शोषण, विषमता और विपन्नता थी, उसे लेकर कहानी लिखी जा रही थी. उस परंपरा को तोड़कर यह अपरिभाषित सत्तापरस्त षड़यंत्र साहित्य में लाया गया है. नामवर सिंह और राजेन्द्र यादव जैसे लोगों ने पूरी कोशिश की कि आर्थिक पक्ष साहित्य के केन्द्र में न आ पाये. इन्होंने साहित्य में जीवन की वास्तविक समस्याओं को दरकिनार कर दिया है. मेरे हिसाब से 'नया' शब्द कोई मायने नहीं रखता. यह घटिया राजनीति है. आंदोलनवाद शुरू हुआ वह इसलिये कि आम जनता का दुःखदर्द साहित्य में न आ पाये. मैं नयेपन के हामीदार की आलोचना करता हूं. ये लोग सरकारी कारसेवक हैं. ऐसा नहीं है कि इन्होंने बेकार ही लिखा है, लेकिन ज्यादातर बुरा लिखा है. मैं नामवर सिंह की भूमिका को घृणित मानता हूं. उन्होंने औसत से निचले दर्जे की रचनात्मक क्षमता को लेकर एक ऐसे आलोचना साहित्य को पेश किया है जो सत्ता की चाकरी के अलावा कुछ नहीं है. साहित्यिक आलोचना भी रचनात्मक होती है, लेकिन उनकी आलोचनात्मकता में किसी रचनात्मक क्षमता का परिचय नहीं मिलता. इन्होंने सत्ता की चाकरी की है. इन्होंने सत्ता को साहित्य में लाने की कोशिश की है और गुटबाजी को उछालने की कोशिश की है. इन्होंने यह भ्रामक स्थिति पैदा की कि इन्होंने जिनको महान् साहित्यकार होने का सर्टिफिकेट दिया, वही महान् साहित्यकार है. इन्होंने सत्ता की चाकरी की और उसे प्रगतिशीलता का जामा पहनाया और जो काम किया वह प्रगतिशीलता विरोधी का किया. इसलिये मुझ जैसा आदमी इसकी तीव्र भर्त्सना करता है.

■

विजया सती

दिल्ली विश्वविद्यालय की बी.ए. ऑनर्स और एम.ए. हिन्दी परीक्षाओं में सर्वश्रेष्ठ छात्रा होने के नाते सरस्वती पुरस्कार, मैथिली शरण पुरस्कार और सावित्री सिन्हा स्मृति स्वर्ण पदक से पुरस्कृत. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा टीचर फेलोशिप और कैरियर अवार्ड के लिए चयनित. दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दू कॉलेज में एसोसिएट प्रोफ़ेसर के रूप में कार्यरत. एक सहयोगी काव्य-संकलन के अतिरिक्त दो शोध पुस्तकों का प्रकाशन. विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ और आलेख निरंतर प्रकाशित. सम्प्रति - वर्तमान में बुदापैश्त के ऐल्ते विश्वविद्यालय के भारोपीय अध्ययन विभाग में विज़िटिंग प्रोफ़ेसर के रूप में कार्यरत.

सम्पर्क : vijayasatijuly1@gmail.com

स्मरण

फूल सम आओ हँस हम भी झरें

कीर्ति चौधरी अपने देश से दूर लन्दन में बसी एक ऐसी भारतीय कवयित्री के रूप में जानी जाएंगी, जो मन से सदैव अपने देश, जमीन, बोली और जन से जुड़ी रही.

कीर्ति चौधरी 'तीसरा सप्तक' की कवयित्री के रूप में हिन्दी जगत में जानी जाती हैं. उनका जन्म १९३४ में उन्नाव जिले के एक गाँव में हुआ, पर पढ़ाई के सिलसिले में वे शहर कानपुर आई और साहित्यकार ओंकारनाथ श्रीवास्तव से विवाह के बाद उनके जीवन का लंबा अरसा लन्दन में बीता,

> *खूब खिले हुए फूल को देख कर अचानक खुश हो जाना और स्नेही सुहृद की हार पर मन भर लाना, झुंझलाना, यह ही तो जीवन की समग्रता है, जो कवयित्री के यहां साकार होती है.*

जहां ओंकारजी बीबीसी हिन्दी से संबद्ध थे. कीर्तिजी का निधन जून २००८ में लन्दन में हुआ, लेकिन अपने लेखन से वे हमारे बीच आज भी उपस्थित हैं. उनका जाना जैसे फूल सम हँस कर झरना ही था!

१९५९ में जब अज्ञेय ने उन्हें तीसरा सप्तक में लिया, उससे पहले १९५८ में 'कविताएं' शीर्षक से उनका एक कविता-संकलन प्रकाशित हो चुका था. 'खुले हुए आसमान के नीचे' १९६८ में प्रकाशित उनकी कविताओं का दूसरा संकलन है. उनकी कहानियों का एक संकलन २००४ में आया और अब उनकी सभी कविताएं 'कीर्ति चौधरी समग्र कविताएं' शीर्षक से उपलब्ध हैं.

अपने लेखन में कीर्ति जी एक सहज, सरल, सौम्य भारतीय नारी की छवि के साथ उपस्थित हैं. वे वही लिखती हैं, जो देखती या अनुभव करती हैं.

'तीसरा सप्तक' के परिचय खंड में उन्होंने लिखा : हर समय एक अकेले साहित्य का ध्यान करके बैठे रहना कुछ बनावटी बात जरूर है, दैनंदिन जीवन के छोटे-मोटे कामों में रुचि लेना और प्रथमतः इन्हीं में रुचि लेना अधिक ठीक बात है. और फिर इसी बात को उन्होंने अपनी कविता में भी कहा : *नंदन कानन के सपनों में कभी न आ कर / इस धरती का फूल उगाना मैंने सीखा.* 'समग्र कविताएं : पृष्ठ ३५'

इस धरती पर रहने वाले मनुष्य के स्वभाव की उलझन और उसके मन के उद्वेलन को उन्होंने प्रायः अपनी कविता में साकार किया है : *मेरे मन की तृष्णा तो/हरदम ही मुझको*

भटकाती. 'वही : पृष्ठ : १५७' या फिर *एक जीवन मिला था/उसे जिया नहीं/वह अमृत-घट था/उसे पिया नहीं/भरमाते रहे/प्यासे और निरीह उस झरने की खोज में/जो अंदर था/उसे अपने को दिया नहीं.* 'वही : पृष्ठ : ३८'

उनकी कविताएं इस बात का प्रमाण हैं कि उन्होंने जीवन की समग्रता में रुचि ली. खूब खिले हुए फूल को देख कर अचानक खुश हो जाना और स्नेही सुहृद की हार पर मन भर लाना, झुंझलाना, यह ही तो जीवन की समग्रता है, जो कवयित्री के यहां साकार होती है. इसका अंकन उनके लिए सहज है. वे जीवन के सभी रंगों के बीच ही जीना और मरना चाहती हैं. जीवन के एक पक्ष का गान और दूसरे की सर्वथा उपेक्षा, उन्होंने अपनी कविता में ऐसा नहीं किया. जहां सुख

> उनकी समस्त कविता जीवन की सरलता का गान है. उन्हें जीवन को सुखद बनाने वाले भावों के प्रति सहज रुचि है, चाहे वह साथ की इच्छा हो, भरोसे के हाथ का साथ होना हो या किसी आगत की प्रतीक्षा में बैठना.

की बात है, वहां दुःख का बोध भी : *प्रतिक्षण बढ़ते ही जाने वाले जो अभाव हैं/उनकी कोई पूर्ति नहीं.* 'कीर्ति चौधरी समग्र कविताएं : पृष्ठ १७'

मानव-जीवन के विस्तार-वैविध्य को उन्होंने अपने ढंग से अपनी कविताओं में संजोया है. आशा-निराशा के बीच झूलते जीवन के ऐसे चित्र मन को छूते हैं. वे प्रकृति से प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण करती हैं. फिर उसी से जैसे मानव-मात्र को भी प्रोत्साहन और प्रेरणा देती हैं : *ऊबड़-खाबड़ बेतरतीब पत्थरों में/थोड़ी जगह बनी/बादलों की छांह कभी दूर/कभी हुई घनी/पौधा बढ़ता गया/मार्ग गढ़ता गया.* 'वही : पृष्ठ : ३६'

उनकी कविता का स्वर मूलतः आशावादी है : *मानव जीवन/में धड़कन स्पंदन है/है भले-बुरे का ज्ञान/और है घृणा, प्यार/फिर सबसे बड़ी चीज़ जो है/वह जीवन में कुछ कर जाने की इच्छा है.* 'वही : पृष्ठ :१८'

एक ओर जहां उनकी कविता में अपने भीतर के सहज सद्भाव की यह स्वीकृति है : *लगता है मुझमें अब भी निश्छलता है/हर निर्मल मन दुःख में उन्मन हो,/इसको भी यह खलता है.* 'वही : पृष्ठ : २१'

वहीं अपनी कमियों का यह बोध भी उतना ही तीव्र है : *अब मन पावन नहीं रहा/रीत गया यह मन अनुरागी.* 'वही : पृष्ठ : २२'

उनकी कविता दाम्पत्य प्रेम की उजली छवि से युक्त है : *आह! जी कर उन पलों में क्या करूंगी/जो नहीं संबद्ध तुमसे.* 'वही : पृष्ठ : ७५'

प्रिय की अनुपस्थिति का तीव्र बोध गहराई से कितनी ही कविता-पंक्तियों में उभरा है : *सुबह/सूरज फीका फीका/दीप/का प्रकाश मटमैला/केवल एक तुम्हीं इस गृह में नहीं,/आज के दिन.* 'तीसरा सप्तक, पृष्ठ : ६३'

अधिकतर उनकी प्रेम-भावना में दाम्पत्य के ही चित्र हैं : *वह प्रतीक्षातुरा मुग्धा/द्वार पर अपलक बिछाए नैन/झांकते ऊपर झरोखे से/चपल नादान शिशु के/मृदुल अस्फुट बैन.* 'कीर्ति चौधरी समग्र कविताएं : पृष्ठ : २५'

कवयित्री के जीवन की संतुष्टि का आधार दाम्पत्य-जीवन का यह सहज विश्वास ही है : *मेरी वाणी के सुख दुःख तुमने अपनाए.* 'वही : पृष्ठ : २६'

इसलिए उनकी कविता में प्यार का व्यवहार, प्यार का संसार बहुत सादगी और सरलता से संयोजित है : *आओ करें प्यार की बातें.* 'वही : पृष्ठ : २८'

कीर्ति जी की कविताएं उनके सृजन की प्रक्रिया को भी खोलती हैं. उनके लिए रचना संभव हुई अपनाव से : *अस्फुट स्वर में जब मन का भाव बताया था/तुमने हंस कर ऐसे उसको अपनाया था—/मेरा कहने का चाव बढ़ा.* 'वही : पृष्ठ : २६'

जबकि यहाँ अपने सृजन की हताशा के क्षण भी हैं : *अब कविताई अपनी कुछ काम नहीं आती.* 'वही : पृष्ठ : २०'

उनकी समस्त कविता जीवन की सरलता का गान है. उन्हें जीवन को सुखद बनाने वाले भावों के प्रति सहज रुचि है, चाहे वह साथ की इच्छा हो, भरोसे के हाथ का साथ होना हो या किसी आगत की प्रतीक्षा में बैठना, जिसे वे 'मुंह ढांक कर सोने से बहुत बेहतर' मानती है. उनका सहज संवेदनशील मन तत्पर बना रहता है : *एक सुनहली किरण उसे भी दे दो/भटक गया जो अंधियारे के वन में,/लेकिन जिसके मन में,/अभी शेष है चलने की अभिलाषा.* 'वही : पृष्ठ : ४०'

वे अपने वर्तमान से जुड़ी सजग कवयित्री के रूप में हमारे समक्ष आती हैं. महानगर की हलचल के बीच उनका यह बोध अनायास ही नहीं है : *अरे, मैं तो वही हूं,/ज़माना कितनी तेज़ी से बदलता है.* 'वही : पृष्ठ : २४'

एक अजीब सी कशमकश है/मेरी दुनिया में/जहां कमी हो गई है लोगों की/और मेरी भूमिकाएं अनंत हैं. 'वही : पृष्ठ :३६

कवयित्री के भावों की सरलता अभिव्यक्ति में भी प्रसार पाती है. कभी कोई विरोधाभासी उक्ति प्रभाव घनीभूत करती है, मेघों का झर-झर बरसना और उत्तप्त अंतर का निरंतर दहे जाना ऐसा ही एक उदाहरण है. कुछ विशिष्ट उक्तियाँ मन पर गहरा प्रभाव छोड़ जाती हैं : *भावों के, साधों के क्रौंच-युग्म बिछुडे हैं.* 'तीसरा सप्तक : पृष्ठ : ७२'

मन यह विहंगम है/तुम तक उड़ जाने को/नीड वहीं पाने को. 'समग्र कविताएं : पृष्ठ : १५१'

अरे, यों गर्दन झुकाओ मत/किसी कल्पित भार को/कंधे उठाओ मत. 'वही : पृष्ठ : २६'

समय हमारे बीच बैठ कर/टांक गया कहनी-अनकहनी. 'वही : पृष्ठ : २८'

अन्धकार संकट की घड़ियों-सा/बढ़ता आता था. 'वही : पृष्ठ : १४'

कविता की कुछ पंक्तियां उद्धरण या सूक्ति का रूप ले लेती हैं : *बात कुंठा से नहीं,/गति से सुलझती है.* 'वही : पृष्ठ : ८३'

जिज्ञासा अंतहीन होती है. 'वही : पृष्ठ ४५'

भावों की सहज-सरल फुहार सी छलकाने वाली इस प्राणवान कवयित्री कीर्ति चौधरी की स्मृति को प्रणाम!■

महेन्द्र कुमार शर्मा

जन्म २६ दिसंबर १९३७ को अविभक्त पंजाब के जिला होशियारपुर, तहसील ऊना के गांव सनौली में जो अब हिमाचल प्रदेश में आता है. प्रारम्भिक शिक्षा ग्वालियर में, दिल्ली विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम.ए., रेल मंत्रालय (रेलवे बोर्ड), रक्षा मंत्रालय, बैंक ऑफ इंडिया व पंजाब नैशनल बैंक में राजभाषा के कार्यान्वयन से सम्बद्ध रहे. सेवानिवृत्ति के बाद स्वांतः सुखाय रचनाकर्म करते हैं.

सम्पर्क - बी-७७, आनंद विहार, दिल्ली - ११००९२ ईमेल : mks1937@gmail.com

विचार

बेमौत मौत

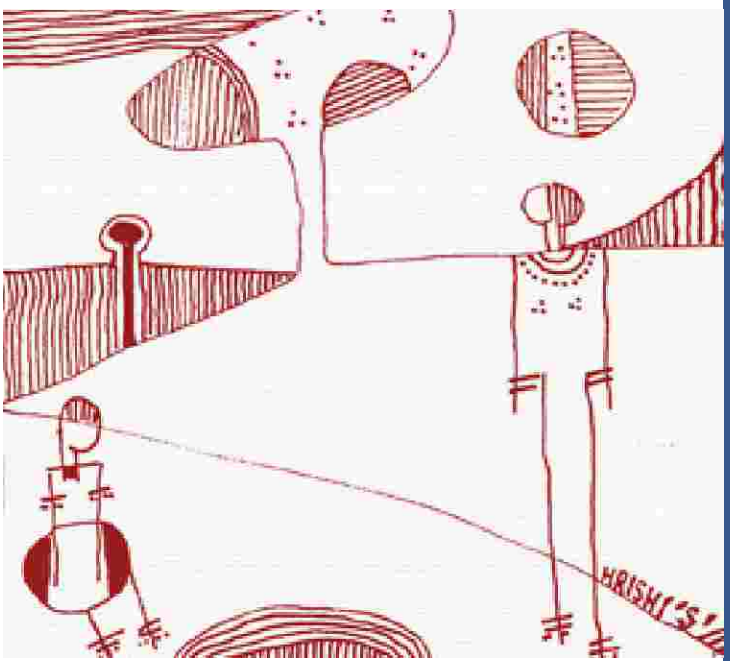

आजकल घर में मरघट की-सी शांति छाई हुई है. मतलब से, मतलब की बात के अलावा कोई किसी से कोई बात नहीं करता. जिस टीवी के लिए घर में हर समय तू-तू मैं-मैं रहा करती थी और जिसके शोर से घर में कानों पड़ी आवाज़ सुनाई नहीं देती थी आजकल वही टीवी बिल्कुल शांत है. कोई उसकी तरफ आंख उठाकर भी नहीं देखता. घर वाले कनखियों से मेरी ओर देखकर मुंह फेर लेते हैं. मैं जानता हूं कि इस स्थिति का दोषी वे मुझे ही मानते हैं और अपने व्यवहार से वे मुझे रह-रह कर अहसास कराते रहते हैं कि उनका सारा गुस्सा किसी और पर या टीवी पर नहीं, केवल मुझ पर है.

बात बिल्कुल मामूली-सी थी लेकिन बेबात तूल पकड़ गई. उस दिन बेटा छुट्टी पर था. मैं तो रिटायर्ड हूं ही. मैं टीवी पर उस दिन की संसद् की कार्रवाई देख रहा था. हमेशा की तरह उस दिन भी ज़बरदस्त हो-हल्ला, हंगामा हो रहा था. कई सदस्य अध्यक्ष की कुर्सी के ठीक नीचे इकट्ठे होकर शोर मचा रहे थे. अध्यक्ष उनसे बार-बार शांत रहने के लिए कह रहे थे. उनके कहने में अपील, अनुरोध, बेबसी, दयनीयता का भाव अधिक था, आदेश का बिल्कुल भी नहीं. कई अन्य सदस्य अपनी-अपनी सीटों पर से ही खड़े होकर चिल्ला रहे थे. कौन क्या कह रहा था, कौन किस बात का विरोध कर रहा था और कौन किसका समर्थन, इसका कुछ भी पता नहीं चल रहा था. अक्सर कार्रवाई देखते रहने तथा थोड़े-बहुत व्यक्तिगत संपर्क के कारण मैं कुछ सदस्यों को तो बखूबी पहचान रहा था किंतु अधिकांश का मुझे पता नहीं चल रहा था कि वे कौन हैं, किस पार्टी से हैं और क्यों तथा क्या कह रहे हैं. शोर-शराबा केवल प्रतिपक्ष तक सीमित नहीं था, सरकारी पक्ष भी हरकत में आ चुका था. उसके कई सदस्य हाथ हिला-हिलाकर, चिल्ला-चिल्लाकर यह तो पता नहीं क्या बोल रहे थे पर मुझे लगा कि वे प्रतिपक्ष का विरोध ही कर रहे होंगे. किसी पार्टी का कोई भी नेता अपने सदस्यों को रोकने का कोई प्रयास नहीं कर रहा था. उलटे कुछ नेता इशारों से, आंखों से अपने सदस्यों को प्रोत्साहित कर रहे थे, उकसा रहे थे. केवल सरकार किंकर्तव्यविमूढ़ थी. प्रधानमंत्री शून्य में ताक रहे थे. थोड़ी-सी सरकार आपस में विचार-विमर्श में तल्लीन थी, थोड़ी-सी रोज़-रोज़ की इस चिर-परिचित हुल्लड़बाज़ी के प्रति पूर्णतः

> *कई सदस्य अध्यक्ष की कुर्सी के ठीक नीचे इकट्ठे होकर शोर मचा रहे थे. अध्यक्ष उनसे बार-बार शांत रहने के लिए कह रहे थे. उनके कहने में अपील, अनुरोध, बेबसी, दयनीयता का भाव अधिक था, आदेश का बिल्कुल भी नहीं.*

उदासीन थी तो बची-खुची मन-ही-मन इस फ्री-स्टाइल अखाड़ेबाज़ी का रीप्ले की तरह आनन्द ले रही थी.

अध्यक्ष की हर संभव चिरौरी के बावजूद यह वितंडावाद चलता रहा. अंततः बेबस अध्यक्ष उठकर खड़े हो गए और उन्होंने अंग्रेज़ी में The Speaker is on his legs. Please take your seats का आदेश दिया. किंतु यह किसी कस्बे के किसी स्कूल की कोई कक्षा नहीं थी कि विद्यार्थी अध्यापक की बात मानकर, उसके प्रति सम्मान से या डर से या अनुशासन की भावना से चुप होकर बैठ जाते. यह लोगों के चुने हुए

> *जिन्होंने खुद कभी कानून को कुछ नहीं समझा, कभी उसे माना नहीं, उनके बनाए कानूनों का क्या? जिन कानूनों से कानून बनाने वाले ही ऊपर हों, उन कानून बनाने वालों में आपकी श्रद्धा हो सकती है, मेरी नहीं. और किसी समझदार आदमी की होनी भी नहीं चाहिए.*

प्रतिनिधियों से बनी देश की सर्वशक्तिमान संसद् थी और अध्यक्ष उन्हीं में से चुने हुए मात्र एक स्पीकर. अतः अध्यक्ष भी खड़े रहे और सदस्य भी. लेकिन इसका दूसरा पहलू भी है. आखिर अध्यक्ष के खड़े रहते सदस्य बैठ भी कैसे जाते! वे कैसे इस नितांत अ-भारतीय परंपरा का निर्वाह कर अध्यक्ष का अपमान कर सकते हैं कि वह तो खड़े हों और वे बैठे - भले कितने ही विनीत भाव से चिरौरी करते हुए या कठोर मुद्रा में आदेश देते हुए वह उनसे बैठ जाने के लिए क्यों न कह रहे हों. आखिर कम-से-कम इतना संस्कार तो इन सदस्यों के मां-बाप ने उनमें डाला ही होगा कि उम्र में या हैसियत या रुतबे या ओहदे में अपने से बड़े किसी के आने पर या खड़े होने पर, उठकर खड़े हो जाना चाहिए और जब तक वह चला न जाए या खुद बैठ न जाए तब तक खड़े ही रहना चाहिए. ऐसा न करना उसका अपमान होगा, उसके प्रति धृष्टता होगी.

टीवी पर संसद् की अब तक की यह जीवंत कार्रवाई मेरे साथ बैठा मेरा बेटा बड़े धैर्य से देखता रहा - सुनने-समझने लायक तो उसमें कुछ था ही नहीं. जब शायद उससे और नहीं सहा या रहा गया तो वह मुझसे पूछ बैठा -

बेटा - पापा, आप यह क्या देख रहे हैं?

मैं - संसद् की कार्रवाई है बेटे.

बेटा - वो तो है, पर इसमें आप देख क्या रहे हैं?

मैं - क्यों, तुम्हें कुछ और देखना है क्या?

बेटा - सवाल ये नहीं है कि मुझे कुछ और देखना है क्या. सवाल ये है कि आप देख क्या रहे हैं.

मैं - मैं क्या देख रहा हूँ इसकी चिंता छोड़ो. तुम्हें क्या देखना है, यह बताओ.

बेटा - मैं जो भी देखूंगा उसका स्टैण्डर्ड इससे तो अच्छा ही होगा, भले वह गोविन्दा के नाच की भौंडी नकल ही क्यों न हो.

मैं जानता था कि टीवी में मेरे बेटे की रुचि अत्यंत सीमित है. उसके हाथ में रिमोट प्रायः डिस्कवरी या स्पोर्ट्स चैनल पर ही अटक जाता है. पर संसद् की कार्रवाई के बारे में उसका आक्रोश मेरी कल्पना से परे था. मुझे लगा कि वह संसद् में चल रही हुल्लड़बाज़ी को कम, मेरी रुचि और बुद्धि को अधिक चुनौती दे रहा था. मैं एकबारगी तिलमिला उठा, पर फिर भी स्वयं को संयत करते हुए मैंने कहा, 'तुम्हें कुछ और देखना है तो टीवी वहां लगा लो, लेकिन मैं क्या देख रहा हूं और क्यों इसके बारे में मुझे बताने की ज़रूरत नहीं है.'

बेटा - मुझे कुछ और नहीं देखना, मैं तो बस यही जानना चाहता था कि आप क्या देख रहे हैं और क्यों. यही कुछ देखना है तो गली-मोहल्लों में लोगों को पानी, बिजली, कूड़े-करकट पर लड़ते, हाथापाई करते सामने खड़े होकर देखिए. उनका लड़ना फिर भी कोई मतलब रखता होगा. ये लोग किन बातों पर क्यों लड़ रहे हैं इसका ईमानदार जवाब तो इनके पास भी नहीं होगा.

मैं - जानते हो ये लोग कौन हैं?

बेटा - इन्हें कौन नहीं जानता? लोग तो इनकी रग-रग से वाकिफ हैं. वे इन्हें जानते भी हैं और अच्छी तरह पहचानते भी हैं.

मैं - जानते हो ये लोग देश के लिए कानून बनाने वाले हैं.

बेटा - यह आपका भ्रम है. जिन्होंने खुद कभी कानून को कुछ नहीं समझा, कभी उसे माना नहीं, उनके बनाए कानूनों का क्या? जिन कानूनों से कानून बनाने वाले ही ऊपर हों, उन कानून बनाने वालों में आपकी श्रद्धा हो सकती है, मेरी नहीं. और किसी समझदार आदमी की होनी भी नहीं चाहिए.

मैं - तुम हद पार कर रहे हो.

बेटा - मैं तो बहुत ज़ब्त किए हुए हूं. हद तो ये लोग पार कर चुके हैं. देश इन पर कैसे पैसा लुटा रहा है! इनके कैसे-कैसे

नखरे सह रहा है! इन लोगों के इन कारनामों के लिए! इनकी इन करतूतों के लिए! ऊपर से इनके ये करतब सारे देश को दिखाए जा रहे हैं और आप जैसे प्रबुद्ध माने-जाने वाले श्रद्धावान, भक्त लोग उन्हें इस तरह टकटकी लगाकर देखते हैं. फिर घंटों उन पर बहस करते हैं, आपस में लड़-भिड़ते हैं. गली-मोहल्ले में कोई ऐसी हरकत करे तो आप फौरन पुलिस बुला लें, पुलिस उसे पकड़कर थाने में बंद कर दे. और यहां उसे सारे देश के लिए प्रसारित किया जा रहा है कि 'आइए, देखिए आपके चुने हुए प्रतिनिधि, आपके नेता, आपके कानून बनाने वाले आपके लिए क्या कर रहे हैं. आपका पैसा किस तरह कैसे लोगों पर बरबाद किया जा रहा है.' क्यों नहीं पुलिस इन्हें पकड़कर ले जाती? क्यों नहीं इन्हें अंदर कर दिया जाता?

मैं - तुम तो मूर्ख हो. तुम्हें मालूम नहीं कि संसद् पुलिस, अदालत के दायरे से बाहर है, उसके हस्तक्षेप से बाहर है?

बेटा - जी नहीं. ये इनका कहना है. हमें बेवकूफ बनाने के लिए. संसद् देश के लिए कानून बनाने के लिए, देश के मसलों पर चर्चा करने के लिए, सरकार को उसकी कमियों, गलतियों, ज़्यादितियों के लिए आड़े हाथों लेने के लिए पुलिस, अदालत के दायरे से बाहर हो, यह बात तो समझ में आती है, लेकिन हाथापाई, मारापीटी, गाली-गलौज के लिए भी, देश की गाढ़े पसीने की कमाई को इस तरह फूंकने के लिए भी कानून से बरी हो, यह किस कानून से? किस अधिकार से? सदस्य एक-दूसरे के कपड़े फाड़ते रहें, गले पकड़ते रहें, चर्चा-बहस के लिए दिए गए कागज़ात फाड़कर सदन में उड़ाते रहें, माइकों का मिसाइलों की तरह इस्तेमाल करते रहें, कानून-व्यवस्था की धज्जियां उड़ाते रहें और पुलिस, अदालत, लोग बेबस चुपचाप तमाशा देखते रहें, यह कौन से समाज का नियम है, दस्तूर है? किसी और जगह, किसी और संस्था में बरदाश्त करेंगे आप ऐसी हुड़दंगबाज़ी? ये आपकी संसद् है और आप जैसे प्रबुद्ध लोग इन हरकतों को देख-देखकर भी उस संसद् को कानून बनाने वाली संस्था बताएं, उसके विशेषाधिकारों की दुहाई दें, इससे बड़ी विडम्बना, इससे बड़ा देश का दुर्भाग्य और क्या हो सकता है? जिस संस्था को स्वयं उसके सदस्य अपने चरित्र, आचरण, संकीर्ण स्वार्थ, भ्रष्ट तौर-तरीकों, नैतिकहीनता, अपराधी वृत्तियों से नष्ट करने पर तुले हुए हों, किस मुंह से आप उसकी गरिमा, मर्यादा की बात करते हैं, उसकी वकालत करते हैं, उसके विशेषाधिकारों की दुहाई देते हैं? पता नहीं कैसे आप ऐसी हुल्लड़बाज़ी, नंगा नाच देखकर लज्जित-क्रोधित होने की बजाय आंखें गड़ाकर उसे देखते हैं, चटकारे लेते हैं और दूसरों से अपेक्षा करते हैं कि वे भी अपनी बुद्धि को, विवेक को, स्वाभिमान को, आंखों

सदस्य एक-दूसरे के कपड़े फाड़ते रहें, गले पकड़ते रहें, चर्चा-बहस के लिए दिए गए कागज़ात फाड़कर सदन में उड़ाते रहें, माइकों का मिसाइलों की तरह इस्तेमाल करते रहें, कानून-व्यवस्था की धज्जियां उड़ाते रहें और पुलिस, अदालत, लोग बेबस चुपचाप तमाशा देखते रहें, यह कौन से समाज का नियम है, दस्तूर है?

के पानी को ताक पर रखकर इसका मज़ा लें! क्या इसी के लिए हम इन लोगों पर प्रति मिनट करोड़ों रुपए खर्च कर रहे हैं और ये प्रसारण करके लोगों को दिखा रहे हैं कि 'आओ, देखो तुम्हारे सूरमा प्रतिनिधि कैसा जौहर दिखा रहे हैं?'

मैं - तुम भी तो इन्हें चुनने वालों में हो.

बेटा - जी नहीं, मुझ पर इसका न दोष है, न बोझ, न पाप और न ही जिम्मेदारी. आप जानते हैं कब से मैंने वोट नहीं दिया.

मैं - तुम्हारे एक के वोट न देने से क्या होता है?

बेटा - मैं एक अकेला नहीं हूं. मेरी तरह और भी कइयों की आंखें खुल चुकी हैं और वे इन जैसे लोगों को वोट देकर अपनी आत्मा पर बोझ नहीं डालते. पर यह भी कोई हल नहीं है और इससे कोई फर्क भी नहीं पड़ता.

मैं - फिर करोगे क्या?

बेटा - अभी क्या कहा जा सकता है? ऐसी स्थितियों की प्रतिक्रिया क्या कोई योजना बनाकर होती है? ये लोग जनता के बीच अपना विश्वास खो चुके हैं, अपना सम्मान खो चुके हैं. कुछ आप जैसे और इनसे अपना उल्लू सीधा करने वाले लोगों और मजबूर सरकारी मशीनरी के बलबूते पर ही ये लोग टिके हुए हैं. वरना आम आदमी तो इन पर थूकना भी नहीं चाहता. उसके दिल में इनके प्रति जो आग धधक रही है वह कभी भी भड़क उठेगी. एक बार वो आग भड़क उठी तो फिर किसी के बुझाए नहीं बुझेगी.

पहले इसके कि मैं कुछ बोलूं, असहाय, बेबस अध्यक्ष ने दो घण्टे के लिए सदन को स्थगित कर दिया और सीधे प्रसारण की कार्रवाई बंद हो गई. मैंने रिमोट बेटे की तरफ बढ़ा दिया. उसने रिमोट को ज़ोर से मेज़ पर पटकते हुए कहा, 'मुझे तो कोई प्रोग्राम नहीं देखना था. पर मुझे आप पर तरस आता है कि रिटायर होकर आपके स्टैण्डर्ड को क्या हो गया है कि आप इस तरह की तमाशेबाज़ी से कभी विचलित नहीं होते, उद्वेलित नहीं होते, उलटे इस तरह दत्तचित्त होकर उसे देखते

हैं. आप न समझते हैं न सोचने के लिए तैयार हैं कि हम लोगों ने देश को किन लोगों के हाथों सौंप रखा है, वे देश को कहां ले आए हैं, कहां ले जा रहे हैं और कल को देश का क्या होगा. यह आप के लिए भी खतरनाक है और देश के लिए भी. इसके लिए जितने वे ज़िम्मेदार हैं, इसके जितने वे दोषी हैं उतने ही आप भी. अपनी पीढ़ियों को आप कहां धकेल रहे हैं, इसका आपको ध्यान ही नहीं. जिस बात से आपकी नींद हराम हो जानी चाहिए उसे आप ऐसा आनन्द ले-लेकर देख रहे हैं. आप से अधिक चिंता तो हमारी पीढ़ी को है', इतना कहते-कहते बेटा पैर पटकते हुए घर से बाहर चला गया.

बेटे का मेरे प्रति यह व्यवहार मेरे लिए एकदम नया था और अप्रत्याशित भी. पहले तो मैं तिलमिला उठा, बेटा वहां से चला न गया होता तो शायद मेरी तिलमिलाहट फूट भी पड़ती. उसके चले जाने ने मेरे विस्फोट को रोक दिया. थोड़ी देर बड़बड़ाने के बाद मैं कुछ शांत भी हो गया और थोड़ा आत्मस्थ भी. थोड़े शांत मन से सोचने पर मुझे लगने लगा कि उसका कथन, उसकी प्रतिक्रिया महज़ किसी क्षणिक आवेश का परिणाम नहीं थे बल्कि उनमें तथ्य है, सार है और तत्व भी. मुझे आश्चर्य हुआ कि इन जनप्रतिनिधियों का जैसा विश्लेषण उसने इतनी छोटी उम्र में और उनके कारनामों के बारे में पढ़, सुन तथा दूर से देखकर कर लिया, वह मैं इतनी उम्र हो जाने व ऐसे कितने ही जनप्रतिनिधियों के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क के बावजूद नहीं कर पाया. सेवाकाल के दौरान मैं न मालूम ऐसे कितने जनप्रतिनिधियों के निकट सम्पर्क में आया हूंगा लेकिन दो-चार को छोड़कर मुझे कभी किसी ने किसी भी रूप में देश के लिए कानून बनाने वाले, देश को दिशा दे सकने वाले व्यक्ति के रूप में प्रभावित नहीं किया. अनेक के प्रति मैं अव्यक्त क्रोध व घृणा से भरा रहा. बहुतों ने मुझे अपमानित किया तो कुछ ने प्रताड़ित भी. और वह भी मामूली तथा गलत बातों पर. एक महानुभाव मामले को जाने-समझे बिना दहाड़े चले जा रहे थे. उन्हें जब सही स्थिति बताने की कोशिश की गई तो वह बिगड़ उठे, बोले, 'हम दस-दस लाख को बेवकूफ बनाकर यहां आते हैं. तुम हमें मूर्ख बनाने चले हो?' मैं इनकी अपेक्षाओं, मांगों, आदेशों, नखरों, दंभ, सीनाज़ोरी का प्रत्यक्षदर्शी ही नहीं, भुक्तभोगी भी रह चुका हूं. जिस कार्यालय में आने की दस्तक दे दें वहां सारा-का-सारा दफ्तर हिल जाए, तहलका मच जाए, दफ्तर का सारा काम ठप्प पड़ जाए, लाखों रुपया इनकी आवभगत, मेहमानबाज़ी, चोचलेबाज़ी में फुंक जाए और इनके जाने पर किसी को समझ में न आए कि ये वहां किसलिए आए थे और इन्होंने वहाँ मेहमानबाज़ी करवाने, उपहार बटोरने व अपने व्यक्तिगत कामों की लिस्टें थमाने के अलावा क्या देखा, क्या किया. इनके सामने बड़े-से-बड़े अफसर की औकात चपरासी या घरेलू नौकर से अधिक नहीं होती. और यह स्थिति तो छोटी-छोटी समितियों के रूप में इनके घण्टे-आध-घण्टे के लिए किसी ऐसे दफ्तर में जाने पर होती है जहां इनकी कोई राजनीतिक विवशता नहीं होती.

> *हम लोगों ने देश को किन लोगों के हाथों सौंप रखा है, वे देश को कहां ले आए हैं, कहां ले जा रहे हैं और कल को देश का क्या होगा. यह आप के लिए भी खतरनाक है और देश के लिए भी. इसके लिए जितने वे ज़िम्मेदार हैं, इसके जितने वे दोषी हैं उतने ही आप भी.*

मुझे लगा कि बेटा कुछ गलत नहीं कह रहा, शायद मेरे मन में कहीं दबी पड़ी भावनाओं को ही मुखर कर रहा है, परंतु इस सबके बावजूद मैंने स्वयं को बड़ा आहत, अपमानित महसूस किया. मन में शायद कहीं यह बात चुभ गई कि जो बात मैं नही सोच पाया, समझ पाया, कह पाया, वह इतने सहज, प्रभावशाली व चुभने वाले अंदाज़ में कहकर बेटे ने मुझे बता दिया कि मैं कितना नादान ही नहीं, मूर्ख भी हूं. शायद मेरा अहं आड़े आकर मुझे यह मानने से रोक रहा था कि मेरी और बेटे की सोच में कोई मौलिक अंतर नहीं है. मैं बस उसे स्वीकार नहीं कर पा रहा हूं.

मेरे साथ अक्सर ऐसा हुआ है कि मैं अपने मन की बात कहे जाने पर भी अहंवश, अपने मन व बुद्धि के विरोध के बावजूद, उस बात के विरोध में बोल पड़ा हूं और फिर अपनी बात को रखने भर के लिए मूर्खतावश बराबर उस पर डटा रहा हूं. भीतर-भीतर मेरा मन मुझे लताड़ता रहा है कि मैं गलत कर रहा हूं पर मैं उस गलती को स्वीकार करने का साहस नहीं जुटा पाया. यह शायद मेरी ही नहीं, मानव स्वभाव की ही कमज़ोरी है. बेटे के इस तरह बोलकर चले जाने के बाद मैंने सहानुभूति की अपेक्षा में पत्नी की ओर देखा तो उसने उलटे मुझे ही दोषी करार दिया. कहने लगी, 'आप भी कमाल करते हैं, खुद सारा दिन उन्हें कोसते रहते हैं और जब बेटे ने वही बात कह दी तो उनकी वकालत करने लगे.'

मैं - लेकिन उसके बोलने का यह कौन-सा तरीका है?

पत्नी - हां, तरीका उसका गलत हो सकता है, उसे आपसे इस तरह नहीं बोलना चाहिए था. पर आप भी तो गलत बात को सही ठहराने पर तुले हुए थे. वह भी आपा खो बैठा. फिर

अपनी इज़्ज़त अपने हाथ होती है. आप बेबात गलत बात को ठीक ठहराने पर न उतरते तो ऐसी नौबत क्यों आती? पहले कभी वह बोला है आपसे इस तरह?

पत्नी की ओर कातर दृष्टि से देखते हुए मैं चुप हो गया. थोड़ी देर में बेटा वापस आ गया. मैंने निश्चय कर लिया था कि अब इस बारे में उससे कोई बात नहीं करूंगा. लेकिन उसने ही फिर छेड़ दिया. आते ही बोला, 'क्यों, दो घण्टे तो हो गए. आपके आदर्श पुरुष, देश के कर्णधार अभी अखाड़े में उतरे नहीं.' बेटे की यह व्यंग्योक्ति मुझे लगा सांसदों पर नहीं, मुझ पर लक्षित है. मुझे लगा वह मुझे अपमानित करने, नीचा दिखाने पर तुला हुआ है. मैं अपना धैर्य व संयम खो बैठा. मैंने लगभग चिल्लाकर कहा, 'तुम हद दर्जे की बदतमीज़ी पर उतर आए हो.'

बेटा - मेरी सच्ची बात तो आपको बदतमीज़ी दिख रही है और आप उस पर इतने तमक रहे हैं, पर उनकी गुंडागर्दी देखते हुए भी आपको दिखाई नहीं दे रही. आप मज़े ले-लेकर उसे देख रहे हैं.

मैं - तुम हद से बढ़ते जा रहे हो.

बेटा - हद से आगे मैं नहीं बढ़ रहा. हद वो लोग पार कर चुके हैं, सिर्फ आप जैसे लोगों की बदौलत जो आनंद ले-लेकर उनकी हरकतों को देखते हैं. वरना बताइए, आपके घर में ऐसी तमाशेबाज़ी हो तो आप करेंगे उसे बरदाश्त! मज़दूर अपने अफसर का घेराव कर दें तो आप पुलिस को बुला लेते हैं, कइयों को सस्पेंड कर देते हैं. यहां स्पीकर का हमेशा ही घेराव रहता है, क्यों नहीं पुलिस बुलाई जाती? मज़दूर काम न करे, हड़ताल पर चला जाए तो आप उसकी तनख्वाह काट लेते हैं. यहां कोई काम होता ही नहीं, ये लोग हमेशा ही हड़ताल पर रहते हैं. इनका वेतन और भत्ते क्यों नहीं काटे जाते?

मैं - मज़दूर और एम पी एक बराबर हो गए?

बेटा - नहीं, हो भी नहीं सकते. मज़दूर कुछ तो अपनी ज़िम्मेदारी समझते हैं, इन्हें तो अपनी ज़िम्मेदारी का अहसास भी नहीं. मज़दूर में किसी के प्रति तो वफादारी होती है. ये जनता के प्रतिनिधि कहलाते हैं और जिस जनता के बूते पर ये चुनकर आते हैं उसी जनता के प्रति इनकी क्या वफादारी होती है? जिस देश के निर्माण के लिए इन्हें चुना जाता है, उसी देश को इन्होंने बंधक बना रखा है, उसी देश को लूट खाने, चूस लेने, तबाह करने की आपस में होड़ लगा रखी है इन्होंने. पर आपको ये सब दिखाई नहीं देता. आपका तो टीवी पर इनका मल्लयुद्ध देखकर मनोरंजन हो जाता है और आप उसी में मस्त हो जाते हैं, उसी से तृप्त हो जाते हैं.

मैंने बेटे का ऐसा उग्र, रौद्र रूप कभी नहीं देखा था. ऐसे विस्फोट की मैंने न कल्पना की थी, न ही मुझे उस पर विश्वास हो रहा था. यह ज्वालामुखी उसके भीतर न जाने कब से धधक रहा था जो आज मेरे व्याज से फूट पड़ा, जैसे मैंने उसमें पलीता लगा दिया हो. मन-ही-मन मैं भी मान रहा था कि बेटा मेरे मन की ही बात कह रहा है किंतु मैं उसे शायद मात्र इस कारण स्वीकार नहीं कर पा रहा था कि यह बात मेरा बेटा मुझसे कह रहा था. न मालूम क्यों मुझे लग रहा था कि वह इन सदस्यों पर नहीं, वस्तुतः मेरे अहं पर चोट कर रहा था.

थोड़े देर की चुप्पी के बाद उसने कहा, 'पर कसूर इनका नहीं, अपने-आप को पढ़ा-लिखा, प्रबुद्ध, बुद्धिजीवी मानने वाले आप जैसे लोगों का है. आप ही जैसे लोग तरह-तरह से व्याख्या-विश्लेषण कर-करके, लोकतंत्र के नाम पर इनकी करतूतों, कारनामों, कुकर्मों पर पर्दा डालते हैं, इनकी जीत को लोकतंत्र की जीत बताते हैं, इस अराजकता, गुंडागर्दी को जनता का शासन बताते हैं. इन लोगों को प्रश्रय, बढ़ावा, जीवन देने वाले आप जैसे ही लोग हैं. आज लोकतंत्र बदनाम हो रहा है, मर रहा है तो इनकी वजह से कम, आप जैसे लोगों की वजह से ज़्यादा. देश डूबेगा तो इनकी वजह से नहीं, आप जैसे तमाशबीन बुद्धिजीवियों की वजह से - ठीकरा चाहे जिस किसी के सिर फूटे.'

बेटा अभी न जाने और क्या-क्या बोलता, लेकिन मैं सब्र खो बैठा. मैंने ज़ोर से चिल्लाकर कहा, 'बंद करो ये बकवास.'

बेटा - मुझे बंद करवाकर क्या होगा? करवाना है तो इन्हें करवाइए. है आपमें हिम्मत?

अब मैं और ज़ब्त नहीं कर सका. आपा खो बैठा. रिमोट मेरे हाथ में था. उसे बेटे पर मारने के लिए मैंने हाथ उठाया लेकिन मालूम नहीं कैसे, ऐन वक्त पर, निशाना तो उधर से रोक लिया पर हाथ और रिमोट नहीं रोक पाया. बंदूक से छूटी गोली की तरह रिमोट मेरे हाथ से छूटकर टीवी के स्क्रीन पर लगा और एक भयंकर आवाज़ के साथ टीवी और रिमोट दोनों ने वहीं दम तोड़ दिया. लॉबी में एकदम स्तब्धता छा गई. किसी ने किसी से कुछ नहीं कहा. बेटा चुपचाप बाहर चला गया. पत्नी ने मेरी तरफ आँखें तरेरकर देखा, फिर चुपचाप अपने कमरे में चली गई. जड़वत्, निस्तब्ध मैं वहीं बैठा रहा.

तब से टीवी उसी तरह पड़ा हुआ है. पता नहीं वह निर्वाण को प्राप्त हो चुका है या उसका अभी पुनर्जन्म हो सकता है. नया टीवी खरीदने में भी कोई परेशानी नहीं है. लेकिन अभी उसकी तो क्या घर की किसी और बात की भी कोई भी कोई बात नहीं करता. आस-पड़ोस, गली-मोहल्ले, नगर, संसद्, देश, विश्व में मच रहे सारे शोर-शराबे, हंगामे से एकदम अछूता, विरक्त मेरा घर इस समय बिलकुल शांत है.

■

राजकिशोर

राजनीति में रुचि थी, लेकिन पत्रकारिता और साहित्य में आ गये. अब फिर राजनीति में लौटना चाहते हैं, लेकिन परंपरागत राजनीति में नहीं. सोचते हैं कि क्या मार्क्स की राजनीति गांधी की शैली में नहीं की जा सकती. एक व्यापक आंदोलन छेड़ने का पक्का इरादा रखते हैं. उसके लिए साथियों की तलाश है. आजकल इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, नई दिल्ली में वरिष्ठ फ़ेलो हैं. साथ-साथ लेखन और पत्रकारिता भी जारी है. रविवार, परिवर्तन और नवभारत टाइम्स में वरिष्ठ सहायक सम्पादक के तौर पर काम किया. कई चर्चित पुस्तकों के लेखक. ताजा कृति : उपन्यास 'तुम्हारा सुख'.

सम्पर्क : ५३, एक्सप्रेस अपार्टमेंटस, मयूर कुंज, दिल्ली-११००९६ ईमेल : truthonly@gmail.com

एकनिष्ठता का सवाल

जैसे उत्तर भारत के समाज को समझने के लिए प्रेमचंद को बार-बार पढ़ने की जरूरत है, वैसे ही स्त्री-पुरुष संबंध के यथार्थ पर विचार करने के लिए शरतचंद्र को बार-बार पढ़ना चाहिए. हाल ही में शरत बाबू का अंतिम उपन्यास 'शेष प्रश्न' पढ़ने का अवसर मिला, तो मेरे दिमाग में तूफान-सा आ गया. स्त्री-पुरुष संबंध का शायद ही कोई आयाम हो जिस पर इस विचार-प्रधान, पर अत्यंत पठनीय उपन्यास में कुछ न कुछ नहीं कहा गया हो. और, जो भी कहा गया है, वह इतना ठोस है कि आज भी उतना ही प्रासंगिक लगता है जितना १९३१ में, जब यह पहली बार प्रकाशित हुआ था. हैरत होती है कि हिन्दी की स्त्रीवादी लेखिकाएँ शरत चंद्र को उद्धृत क्यों नहीं करतीं. क्या इसलिए कि वे स्त्री नहीं, पुरुष थे?

जिस एक बिन्दु पर शरत चंद्र की स्थापना सबसे ज्यादा उत्तेजक है, वह है एकनिष्ठता का मुद्दा. लगभग सारी संस्कृतियाँ स्त्री-पुरुष संबंधों में एकनिष्ठता की कायल रही हैं. ईसाई समाजों ने तो इसे कानून की शक्ल भी दे दी, जिसका अनुकरण दूसरे समाज कर रहे हैं. बहरहाल, एकविवाह प्रणाली और एकनिष्ठता में फर्क है. एकविवाह प्रणाली एक समय में एक ही संबंध की पक्षधर है. लेकिन इसमें एक संबंध के टूट जाने पर नया संबंध करने पर रोक नहीं है. इस तरह, कोई स्त्री या पुरुष, हर विवाह में वफादारी निभाते हुए भी, एक के बाद एक असंख्य विवाह कर सकता है. इसीलिए इसे क्रमिक बहुविवाह कहा जाता है. एकनिष्ठता कुछ अलग ही चीज है. इसका सहोदर शब्द है, अनन्यता. कोई स्त्री या पुरुष जब अपने प्रेम पात्र के साथ इतनी शिद्दत से बँध जाए कि न केवल उसके जीवन काल में, बल्कि उसके गुजर जाने के बाद भी कोई अन्य पुरुष या स्त्री उसे आकर्षित न कर सके, तो इस भाव स्थिति को अनन्यता कहा जाएगा. यही एकनिष्ठता है. आज भी इसे एक महान गुण माना जाता है और ऐसे व्यक्तियों की पूजा होती है.

हैरत की बात यह है कि 'शेष प्रश्न' की नायिका कमल, जो लेखक की बौद्धिक प्रतिनिधि है, एकनिष्ठता के मूल्य को चुनौती देती है. उसकी नजर में, यह एक तथ्यहीन, विचारहीन, मूर्खतापूर्ण, जड़ परंपरा का अवशेष है जिसे प्लेग के चूहे की तरह तुरंत घर से बाहर फेंक देना चाहिए. यह प्रसंग उठता है शेष प्रश्न के एक प्रमुख पात्र आशुतोष गुप्त की अपनी मृत पत्नी के प्रति एकनिष्ठता की तीव्र भावना से. जब कमल यह घोषित करती

> *'शेष प्रश्न' आज भी उतना ही प्रासंगिक लगता है जितना १९३१ में, जब यह पहली बार प्रकाशित हुआ था. हैरत होती है कि हिन्दी की स्त्रीवादी लेखिकाएँ शरत चंद्र को उद्धृत क्यों नहीं करतीं. क्या इसलिए कि वे स्त्री नहीं, पुरुष थे?*

है कि नर-नारी के प्रेम व्यापार में अनन्यता को मैं न आदर्श मानती हूं और न ही इसे अतिरिक्त महत्व देती हूँ, तो वयोवृद्ध आशु बाबू विचलित हो जाते हैं. वे कमल से कहते हैं, कमल, तुम मेरे एक प्रश्न का उत्तर दो. मैं पाप-पुण्य की बात नहीं करता, फिर भी सत्य यह है कि मेरे लिए मणि की माँ के स्थान पर किसी दूसरी स्त्री को अपनाने की सोचना तक संभव नहीं. कमल का उत्तर चौंकानेवाला है. वह कहती है, इसका कारण यह है कि आप बूढ़े हो गए हैं.

आशु बाबू बूढ़े हो चुके हैं? हाँ, वे आज बूढ़े जरूर हैं, पर उस समय तो वे बूढ़े नहीं थे, जब उनकी हृदयेश्वरी चल बसी थी. कमल का कहना है कि दरअसल, वे उस समय भी तन से भले ही बूढ़े न रहे हों, मन से पक्के बूढ़े थे. कमल की नजर में बुढ़ापे की परिभाषा यह है : मेरी दृष्टि में सामने की ओर न देख पाना ही मन का बुढ़ापा है. हारे-थके मन द्वारा भविष्य के सुखों, आशाओं, और आकांक्षाओं की उपेक्षा करके अतीत में रमने को, कुछ पाने की इच्छा न रखने को, वर्तमान को एकदम नकारने को और भविष्य को निरर्थक समझने को मैं मन का बुढ़ापा मानती हूँ. अतीत को सब कुछ समझना, भोगे हुए सुख-दुखों की स्मृति को ही अमूल्य पूँजी मान कर उसके सहारे शेष जीवन जीना ही मन का बुढ़ापा है. उपन्यास के आखिरी पन्ने तक आशु बाबू अपने बारे में इस विश्लेषण से सहमत नहीं हो पाते. कमल से उनके अंतिम शब्द ये हैं : कमल, तुम मणि की माँ के प्रति मेरे आज तक चल रहे अविच्छिन्न बंधन को मोह का नाम दोगी, इसे मेरी दुर्बलता का नाम दे कर मेरा उपहास करोगी, किन्तु जिस दिन यह मोह जाता रहेगा, उस दिन मनुष्य का और भी बहुत कुछ नष्ट हो जाएगा. इस मोह को भी तपस्या का फल समझना, बेटी.

ऐसा लगता है कि खुद शरत चंद्र एकनिष्ठता की पहेली को सुलझा नहीं सके थे. यह आदर्श उन्हें उलझन में डालता था तो कहीं से मोहित भी करता था. शेष प्रश्न में दो अनन्य प्रेमी युगल अपना पार्टनर बदल लेते हैं. लेकिन आशु बाबू के अदम्य प्रेम का दीपक पूरी पुस्तक में जलता रहता है. कमल के लिए यह कितना ही अस्वाभाविक हो, आशु बाबू के लिए यही स्वाभाविक है. जब उसका पुराना साथी शिवनाथ उसे छोड़ देता है और दूसरी स्त्री को अपना लेता है, तो वह दुखी होती है, पर सती होना उसे कबूल नहीं है. वह अपने हृदय की खाली जगह एक अन्य पुरुष से भर लेती है.

इस मंथन से निष्कर्ष यह निकलता दिखाई देता है कि किसी से एकनिष्ठता की माँग करना नैतिक नहीं है. प्रेम पैदा होता है, तो मर भी सकता है. लेकिन अगर किसी ने एकनिष्ठता का जीवन चुना है, तो उसे बौड़म या ठहरा हुआ क्यों मान लिया जाए? सबको अपना जीवन अपने तरीके से जीने का अधिकार है. एक तरीका किसी को ठीक लगता है, तो इससे दूसरा तरीका अपने आप बुरा नहीं हो जाता. ■

Who Are You Calling Old?

Proud2B60 :

is a special campaign by Help Age India.

Millions of people are living their later years with unprecedented good health, energy and expectations for longevity.

Suddenly, traditional phrases like "old" or "retired" seem outdated. Help Age's "Who Are You Calling Old?" campaign presents the many faces of this New Age.

New language, imagery, and stories are needed to help older people and the general public re-envision the role and value of elders and the meaning and purpose of one's later years. This campaign is about leading this change. It is about combating the negative image of the frail, dependent elder.

General Query

http://www.helpageindia.org

गर्भनाल द्वारा जनहित में जारी

महेशचंद्र द्विवेदी

७ जुलाई, १९४१ को मानीकोठी, इटावा में जन्म. लखनऊ विवि से भौतिकी में एम.एस.सी. गोल्ड मेडलिस्ट, लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से सोशल प्लानिंग में एस.एस.सी. के अलावा डिप्लोमा इन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन की उपाधियाँ हासिल कीं. प्रकाशित पुस्तकें : उर्मि, भीगे पँख - उपन्यास, सर्जना के स्वर, अनजाने आकाश में - कविता संग्रह, एक बौना मानव, लव-जिहाद - कहानी संग्रह, सत्यबोध- कहानी संग्रह, क्लियर फ़ंडा- व्यंग्य संग्रह, भज्जी का जूता- व्यंग्य संग्रह, प्रिय अप्रिय प्रशासकीय प्रसंग- संस्मरण. लंदन, डिट्रौइट, सिन्सिनाटी, राली, शिकागो, एटलांटा, बर्मिंघम एवं वूल्वरहैम्प्टन में मंचीय काव्य पाठ. सम्प्रति- पुलिस महानिदेशक के पद से सेवानिवृत्त.

संपर्क : 'ज्ञान प्रसार संस्थान', १/१३७, विवेकखंड, गोमतीनगर, लखनऊ. ईमेल : mcdewedy@yahoo.com

यात्रा-वृत्तांत

गौर्नरग्राट की यात्रा

लाविनी, स्विटज़रलैंड का एक गांव. जैसा लावण्यमय नाम वैसा ही कमनीय ग्राम. लेडिग-रोवोह्ल्ट फ़ाउंडेशन के निमंत्रण पर मैं एवं मेरी पत्नी नीरजा इस ग्राम के एक शटो (भव्य भवन - हवेली) के भव्य रोवोह्लट कक्ष में रुके हुए हैं. बल्गारिया, जर्मनी, स्काटलैंड एवं फ्रांस से आये लेखक पेटर, सूज़ाने, मोरेल एवं इला भी इसी भवन में रुके हुए हैं. यह ग्राम जेनीवा से तीस मील दूर लेक जेनीवा के किनारे ऊंची पहाड़ी पर बसा है और मेरे कमरे से झील अपने मीलों के विस्तार में एक छोटे सागर सम दिखती है. झील के उस ओर ऊंची-ऊंची पहाड़ियां हैं जिन पर छितराये बादल किसी भी चित्रकार की तूलिका का सुंदरतम विषय बन सकते हैं. यद्यपि मेरे कक्ष और झील के बीच चार किलोमीटर दूरी वली ढलान है, परंतु दो-चार रंग-बिरंगे भवनों एवं एक हाल ही में जोते गये खेत को छोड़कर पूरी ढलान पर हरीतिमा छाई हुई है. कुछ बाग हैं और कुछ खेत, खेतों में अंगूर, सेब, आड़ू और नाशपाती के वृक्ष पंक्तियों में लगे हुए हैं. सभी वृक्ष फलों से ऐसे लदे हैं कि आश्चर्य होता है कि फट क्यों नहीं पड़ते हैं. सितम्बर का माह है, परंतु यहां बसंत की बहार आई हुई है. मेरे लान में किनारे-किनारे बहुत बड़े-बड़े लाल, पीले और श्वेत गुलाब खिल रहे हैं तथा ग्राम के प्रत्येक घर की बालकनी से लटकते गमलों के पौधों में इतने पुष्प भरे हैं कि गमला और पत्तियां दिखाई ही नहीं पड़ते हैं.

सायंकाल की वेला हो चुकी है, परंतु ऊंचाई के कारण सूर्य का प्रकाश अभी भी वृक्षों की डालों पर पसरा हुआ है. हम (मैं और नीरजा) अभी-अभी स्विटज़लैन्ड के सबसे दर्शनीय स्थलों में एक गौर्नरग्राट से लौटे हैं. प्रातः ७.०८ बजे की बस पकड़ने हम लाविनी ग्राम के 'ला काफ़े' नामक बस-स्टेंड गये थे. उस समय ठंडी हवा बहुत तेज़ी से बह रही थी. मेरी बस आने के पहले एक दूसरी बस आ गई थी और मैं उसके ड्राइवर से अंगेज़ी में पूछने लगा था कि वह बस मौर्ज़ रेलवे स्टेशन जायेगी या नहीं. ड्राइवर के फ्रेंच भाषी होने के कारण मुझे उसकी बात समझ में नहीं आ रही थी. तभी बस में बैठा एक गोरा व्यक्ति अंग्रेज़ी में बोल पड़ा था,

'सर, यह बस मौर्ज़ स्टेशन नहीं जायेगी. अगली बस जो हरे रंग की है और जिसका नम्बर ७२६ है, वह मौर्ज़ जायेगी.'

मेरे 'थैंक्स' कहते ही बस चल दी थी. मैं उस व्यक्ति की सज्जनता एवं शालीनता के विषय में सोच पाता कि एक गोरी महिला जो पास में खड़ी हमारी बातें सुन रही थी, मेरे पास आकर अंग्रेज़ी में बोल पड़ी,

'अगर आप मौर्ज़ जाना चाहते हैं, तो मैं अपनी गाड़ी से पहुंचा सकती हूं.'

> *कुछ बाग हैं और कुछ खेत, खेतों में अंगूर, सेब, आड़ू और नाशपाती के वृक्ष पंक्तियों में लगे हुए हैं. सभी वृक्ष फलों से ऐसे लदे हैं कि आश्चर्य होता है कि फट क्यों नहीं पड़ते हैं.*

मैं भौंचक्का हो गया था और सोचने लगा था कि टैक्सी वाली होगी. यूरोप में टैक्सी अत्यंत मंहगी होती है अतः संदेह मिटाने के लिये मैंने कह ही दिया था,

'हम टैक्सी से नहीं जाना चाहेंगे.'

उसने जो उत्तर दिया, उससे मैं अभिभूत था,

'नहीं, यह मेरी प्राइवेट कार है. मैं मौर्ज़ जा रही हूं और बस वाले से आप की बात सुनकर मैंने आप को साथ चले चलने को कहा है.'

उसने न केवल हमें ले जाकर रेलवे स्टेशन पर उतारा, वरन रास्ते में पड़ने वाले ग्रामों के नाम और उनकी विशेषताओं को भी बताती रही. हम दोनों सोचते ही रह गये थे कि काश हम भारतीय, जो अपनी सभ्यता पर गर्वोक्तियों की झड़ी लगाते नहीं थकते हैं, इन स्विसवासियों से कुछ सीख लेते.

मौर्ज़ स्टेशन पर गाड़ियों के आने जाने का तांता लगा हुआ था. प्रत्येक प्लेटफ़ार्म पर औसतन सात-आठ मिनट में एक ट्रेन आकर छूटती थी. नई ट्रेन के आने का समय और गंतव्य स्टेशनों के नाम प्लेटफ़ार्म के साइनबोर्ड में खटाखट आ रहे थे और एवं ट्रेनें ठीक उसी समय आ-आकर छूट रहीं थीं. हम लोगों ने विस्प स्टेशन के लिये ७.४६ बजे की ट्रेन पकड़ी थी. डिब्बा तीन-चौथाई से अधिक भरा हुआ था, क्योंकि विद्यालय जाने वाले छात्रों एवं आफ़िस जाने वाले कर्मियों के कारण इस समय सामान्य से अधिक भीड़ थी. यद्यपि डिब्बे के यात्री सामान्यतः फ्रेंच या जर्मन बोल रहे थे, परंतु टी.टी. ने हमसे अंग्रेज़ी में टिकट दिखाने को कहा था और हमारा स्विस-पास देखने के बाद पूछा था,

'आप को किसी अन्य सहायता की आवश्यकता हो, तो कृपया मुझे बतायें.'

> *रिफ़िलआल्प तक आते-आते चारों ओर बर्फ़ की पहाड़ियां दिखाई देने लगीं थीं. उसके पश्चात पर्वत पूर्णतः वीरान हो गये थे. कहीं घास तक नहीं उगी थी. हमारे निकट बस पत्थर, पत्थर और पत्थर और ऊंची शिखाओं पर बस बर्फ़, बर्फ़ और बर्फ़.*

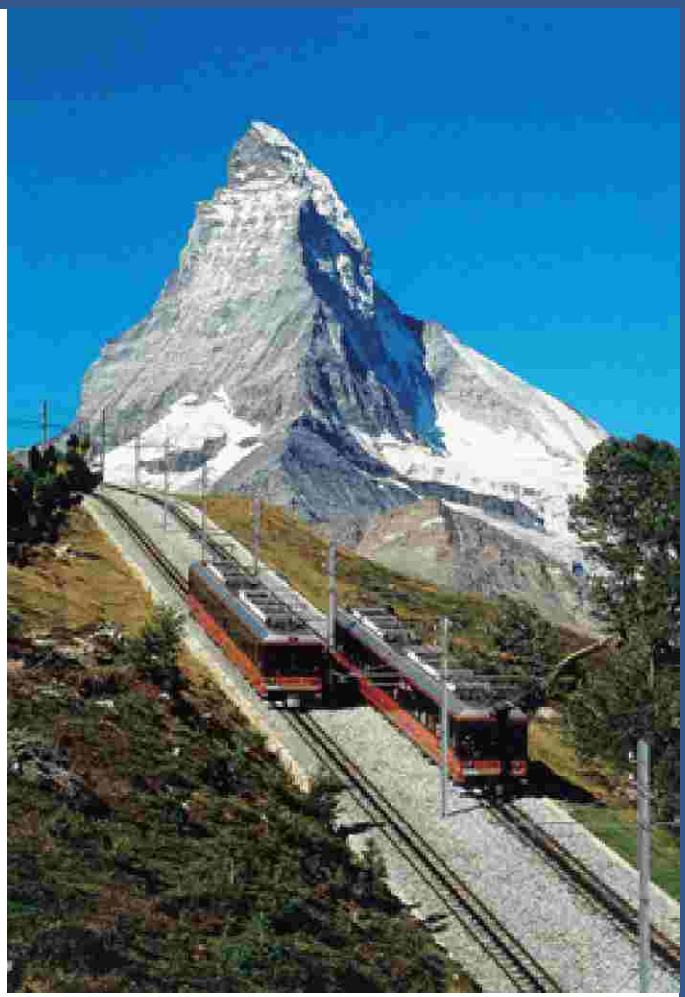

लगभग दस मिनट तक छोटी-छोटी पहड़ियों पर बसे गांवों एवं हरे भरे खेतों के बीच सांप की भांति दौड़ने के पश्चात ट्रेन लौज़ान स्टेशन पर तीन मिनट के लिये रुकी. लौज़ान स्टेशन आने के पहले डिब्बे में ध्वनिविस्तारक यंत्र द्वारा आने वाले स्टेशन के नाम की घोषणा हुई. लौज़ान स्टेशन के पश्चात ट्रेन लेक जेनीवा के किनारे-किनारे दौड़ने लगी. वह दृश्य सुन्दर होने के साथ-साथ रोमांचक भी था क्योंकि जैसे-जैसे झील घूमती थी, वैसे-वैसे तेज़ी से दौड़ती ट्रेन भी घूम रही थी और कहीं-कहीं तो पानी के इतने निकट आ जाती थी कि लगने लगता था कि पानी में अब घुसी कि तब घुसी. झील के किनारे ही अगला स्टेशन वेवे था, जिसे श्वेत नौकाओं का नगर कहना अधिक उपयुक्त होगा. बांयीं ओर पहाड़ी पर बसे नगर के भवन और दांयीं ओर झील के किनारे पर लगीं अथवा बतख की भांति झील में तैरतीं अनगिनत नौकायें सभी श्वेत रंग में रंगीं थीं. ट्रेन चल देनें के कुछ मिनट पश्चात ही मौंट्रो स्टेशन आ गया था और उसके दस मिनट पश्चात झील तो समाप्त हो गई थी, परंतु दायें-बायें दोनों ओर ऊंचे-ऊंचे पहाड़ प्रारम्भ हो गए थे, जिनमें कुछ पर बर्फ़ झिलमिला रही थी. आगे मार्टिनी, स्यूं आदि स्टेशन की एक घंटे की यात्रा के उपरांत विस्प स्टेशन आ गया था, जहां हमने ज़मैर्ट के लिये ट्रेन बदली थी.

ट्रेन के विस्प से खिसकते ही पहाड़ की चढ़ाई प्रारंभ हो गई थी. ट्रेन मन्थर गति से दोनों ओर खड़ी पहाड़ियों के मध्य थकी हुई सर्पिणी सम चढ़ रही थी.

कुछ देर में अगला स्टेशन स्टाल्डेन आने के पूर्व दायीं ओर एक नदी बहती दिखाई दी, जिसका जल अन्य जलाशयों के गहरे नीले रंग के बजाय हरा-नीला सा था. ट्रेन के रुकने पर उसकी कल-कल ध्वनि बड़ी कर्णप्रिय लगती थी. लगभग एक घंटे की चढ़ाई एवं सेंट निकलौस का बड़ा स्टेशन पार करने के पश्चात हम ताश स्टेशन पहुंच गये थे जहां बर्फ़ की एक बहुत बड़ी चोटी दिखाई देने पर मेरी सीट के निकट बैठी एक

> *स्टेशन से बाहर आते ही बर्फ़ की चोटियों का एक अविस्मरणीय दृश्य हमारे समक्ष उपस्थित हो गया. वहां से १३००० फ़ीट से अधिक ऊंची २९ बर्फ़ की चोटियां देखी जा सकतीं थीं. सूर्य की तेज़ धूप में ये चोटियां पिघलती चांदी सी चमक रही थीं और उनमें कुछ तो इतने निकट थीं कि लगता था कि हाथ बढ़ा देने पर पकड़ में आ जायेंगी.*

महिला अकस्मात अपने देश की भाषा में मेरा ध्यान उधर आकृष्ट करने लगी थी. फिर कुछ सम्हल कर अपनी उंगली से उधर इशारा करने लगी थी. मैं भी उस चोटी को देखकर वाह कर बैठा था. ज़मैर्ट लगभग छः हज़ार फ़ीट की ऊंचाई पर बसा एक कस्बा है. वहां स्टेशन पर पहुंचकर हम जल्दी से सड़क पार स्थित दूसरे स्टेशन पर चले गये थे, जहां से गौर्नरग्राट की साढ़े चार हज़ार फ़ीट की कठोर चढ़ाई प्रारंभ होती थी. हम दोनों ने स्विटज़रलैन्ड आने के पहले ही अंतर्जाल से स्विस फ़्लेक्सी पास क्रय कर रखे थे, जिससे हमें तीन दिन ट्रेन, बस अथवा फ़ेरी से अनियंत्रित यात्रा की सुविधा थी और शेष दिनों में आधे दर पर यात्रा उपलब्ध थी. अतः अभी तक की हमारी यात्रा का टिकट हमें नहीं लेना पड़ा था, परंतु ज़रमैट से गौर्नरग्राट की रेल लाइन रेल-यूरोप के अंतर्गत न होने के कारण उसका टिकट लेना पड़ा था परंतु स्विस-पास के कारण आधी दर पर (३८ स्विस-फ्रैंक प्रति-व्यक्ति) मिला था.

ज़रमैट से फ़िडिलबाख और वहां से रिफ़िलआल्प तक की चढ़ाई पर हमें दोनों ओर हरे भरे वृक्ष मिलते रहे थे. ऐसा लगता था कि हरसिल से गंगोत्री की यात्रा पर ट्रेन से जा रहे हों. रिफ़िलआल्प तक आते-आते चारों ओर बर्फ़ की पहाड़ियां दिखाई देने लगीं थीं. उसके पश्चात पर्वत पूर्णतः वीरान हो गये थे. कहीं घास तक नहीं उगी थी. हमारे निकट बस पत्थर, पत्थर और पत्थर और ऊंची शिखाओं पर बस बर्फ़, बर्फ़ और बर्फ़. रोटेनबोडेन स्टेशन के निकट एक छोटी-सी नीले पानी की तलैया अवश्य दिखाई दी थी, जो पता नहीं कब और कैसे बन गई होगी. गौर्नरग्राट स्टेशन पर पहुंचते-पहुंचते चढ़ाई इतनी अधिक हो गई थी कि प्लेटफ़ार्म से कुछ पहले ट्रेन के इन्जन ने चढ़ना बंद कर दिया था और गाड़ी खड़ी हो गई थी. फिर ट्रेन पीछे को ढलान पर उतरने लगी थी और हमारी धुकधुकी बढ़ गई थी क्योंकि पीछे पटरी टेढ़ी-मेढ़ी थी. लगभग एक मिनट पीछे उतरने के पश्चात ट्रेन रुकी थी और फिर और अधिक शक्ति के साथ चढ़ी थी. तब कठिनाई से प्लेटफ़ार्म तक पहुंच पाई थी. उतरकर मैंने देखा कि दोनो रेलों के बीच पूरी लाइन में लोहे के कौग लगे हुए थे, जो ट्रेन को पूरी लंबाई में फंसाये हुए थे और गिरने से बचाये रखते थे.

गौर्नरग्राट पर स्टेशन से बाहर आते ही बर्फ़ की चोटियों का एक अविस्मरणीय दृश्य हमारे समक्ष उपस्थित हो गया. गौर्नरग्राट की स्वयं की ऊंचाई १०१२६ फ़ीट थी और वहां से १३००० फ़ीट से अधिक ऊंची २९ बर्फ़ की चोटियां देखी जा सकतीं थीं. सूर्य की तेज़ धूप में ये चोटियां पिघलती चांदी सी चमक रही थीं और उनमें कुछ तो इतने निकट थीं कि लगता था कि हाथ बढ़ा देने पर पकड़ में आ जायेंगी. स्टेशन के निकट एक लिफ़्ट लगी थी जो हमें गौर्नरग्राट के अंतिम शिखर पर ले गई, जहां पर सुंदर सा कुल्म गौर्नरग्राट होटल बना हुआ था. यहां एक लकड़ी का तना जैसा खड़ा था (जो सम्भवतः नमक का बना हुआ होगा), जिसका नमक दो मृग हम सबकी उपस्थिति से अनभिज्ञ रहकर तन्मयता से पूरे समय चाटते रहे थे. यद्यपि भाषा की कठिनाई के कारण हम उन मृगों की प्रजाति के विषय में किसी से पूछ नहीं पाये, परंतु वे वैसे ही कस्तूरी मृग लग रहे थे जैसे हमने कभी शिमला के निकट कुफ़री में पले हुए देखे थे. नीचे घाटी में बर्फ़ की एक चौड़ी नदी जमी हुई थी, जिसे देखकर जी करता था कि नीचे पहुंचकर हिम-स्नान करें. हम तमाम फोटो ले रहे थे कि एक पांच-छः वर्ष की गोरी लड़की हमारे पास आकर खड़ी हो गई थी. नीरजा को वह इतनी अच्छी लगी थी कि उसकी मां की अनुमति लेकर हमने उसकी फोटो ले ली थी.

एक घंटे तक स्वर्गिक स्थल का आनंद लेकर हमने लाविनी के लिये वापसी की ट्रेन पकड़ ली थी.■

मनोज कुमार श्रीवास्तव

विचारशील लेखक के तौर पर ख्याति. गद्य एवं पद्य पर समान अधिकार. कविता के संसार से अलग, उनका गद्य विचार जगत की गहराईयों में जाता है. अपनी परम्परा से निरंतर संवाद करता इनका लेखन आधुनिकता के प्रचलित मुहावरों से भी बाहर जाता है. प्रकाशित कृतियां : कविता संग्रह - 'मेरी डायरी से', 'यादों के संदर्भ', 'पशुपति', 'स्वरांकित' और 'कुरान कविताएँ'. 'शिक्षा के संदर्भ और मूल्य', 'पंचशील वंदेमातरम्', 'यथाकाल' और 'पहाड़ी कोरबा' पर पुस्तकें प्रकाशित. 'सुन्दरकांड' के पुनर्पाठ पर छह खण्ड प्रकाशित. दुर्गा सप्तशती पर 'शक्ति प्रसंग' पुस्तक प्रकाशित. सम्प्रति : १९८७ संवर्ग के भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी.

सम्पर्क : shrivastava_manoj@hotmail.com

व्याख्या

मानस के अध्याय सोपान क्यों, सर्ग क्यों नहीं

सोपान शब्द की व्युत्पत्ति का सूत्र है - उप अन घञ् सह विद्यमानः उपानः उपरिगतिः अनेन. तो सोपान ऊर्ध्वगति की ओर ही इंगित करता है. आरोहणार्थ नवयौवनेन कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम् (कु. १३९). रामचरितमानस में सुन्दरकांड पाँचवाँ सोपान है. रामचरितमानस में कांड/अध्याय का विभाजन हमारा ध्यान सबसे पहले खींचता है. यहाँ कांड वस्तुतः सोपान है. सामान्यतः महाकाव्यों का विभाजन सर्गों में होता आया है, लेकिन तुलसी सर्ग नहीं सोपान कहते हैं. सर्ग का अर्थ है सृष्टि, सोपान है सीढ़ी. सृष्टि लक्ष्य से मुक्त रह सकती है, सोपान नहीं क्योंकि सिरजनहार सृष्टि में अपनी आभा को प्रतिबिम्बित करता है और प्रयोजन तथा उद्देश्य की सीमाओं से मुक्त रहता है. वह अपना उद्देश्य आप ही है. स्वतः सम्पूर्ण (absolute). उस विश्वंकर के द्वारा अभिसृष्ट इस जीवन को वजह और सबब की तानाशाही में नहीं बाँधा जा सकता. कवि रामधारीसिंह दिनकर यही कहते थे 'जीवन का उद्देश्य स्वयं जीवन है.' तुलसी को भी दंभ नहीं कि अपनी कविता से वे कोई समानान्तर सृष्टि कर रहे हैं. उनकी घोषणा है 'एहि मंह रुचिर सप्त सोपाना/रघुपति भगति केर पंथाना.

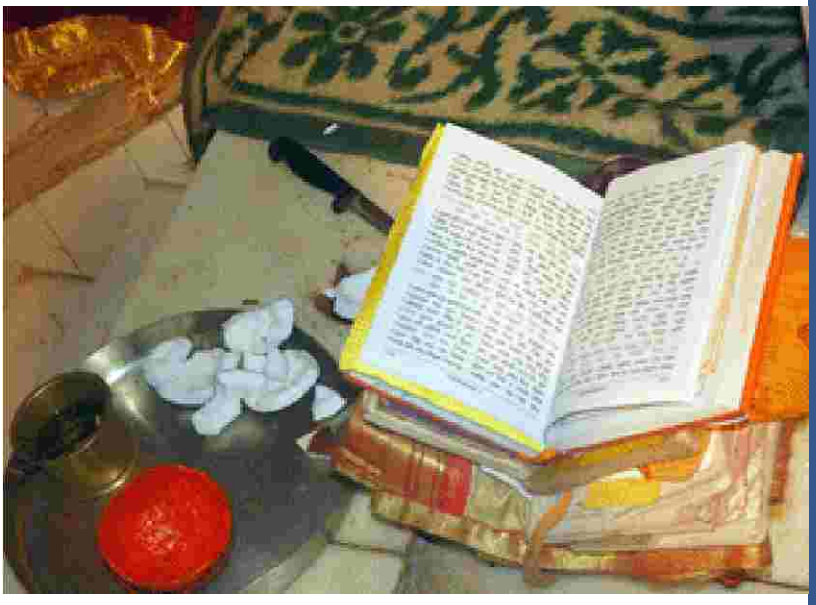

लेकिन रामचरितमानस मनुष्य के लिए ऊर्ध्वारोहण की एक यात्रा है. ऊर्ध्वारोहण के इसी अर्थ में वह लौकिक और पौरुषेय है. ईश्वरीय नहीं. तुलसी के लिए उनके नायक के जीवन का एक अभीष्ट है, एक अभिप्राय है. वह इस पृथ्वी पर निरुद्देश्य या निष्प्रयोजन नहीं आया है. जब वे सर्ग न कहकर सोपान कहते हैं, उसी समय वे अपने सरोकार की घोषणा करते हैं. जीवन एक ध्येय की ओर प्रयाण है. किसी ने सही कहा कि : हमारे शौक की वो इंतहा थी. क़दम रखा तो मंज़िल रास्ता थी. अपने महाकाव्य के अध्यायों को सोपान कहकर तुलसी अपने उच्चाशय और ऊर्ध्वदृष्टि को स्पष्ट कर रहे हैं. यह उनकी बुलंदपरवाज़ी है. तुलसी वैराग्य के कवि नहीं हैं जहाँ सभी अभिप्रायों और मुरादों से मुक्ति मिल जाती है. वे अपनी तरह से महत्वाकांक्षी हैं. यह ज़रूर है कि उनका विधेय हमें किसी चूहा-दौड़ में शामिल करवाने का नहीं है. वे जानते हैं कि चूहा-दौड़ अंततः चूहों की दौड़ है और जब आदमी चूहा बनने की हवस में हो तो वह गणेशजी के मूषक या मिकी माउस या स्टुअर्ट लिटिल जैसा सुन्दर नहीं दिखता, बहुत वीभत्स दिखता है. उसे बहुत-सी प्रसाधन सामग्री भी सुन्दर नहीं बना पाती. ध्यान रखें कि तुलसी महदिच्छा रखते हैं और उसके क़तई विरोधी नहीं हैं. लेकिन यह वह महत्वाकांक्षा नहीं है जिसका मोती, जयशंकर प्रसाद के शब्दों में, निष्ठुरता की सीपी में रहता है और जिसके दाँव पर मनुष्यता सदैव हारी है. वह महत्वाकांक्षा तो मरीचिका है. जैसे-जैसे आप उसकी ओर भागते हैं, वैसे-वैसे वह पीछे हटती जाती है. वह बालू की भित्ति है, आँधी का दीपक, बालक का घरौंदा. वह ऊपर उठने के बाद भी भीतर एक पछतावा छोड़ देती है: कभी जो ख़्वाब था वह पा लिया है/मगर जो खो गई वह चीज़ क्या थी. लेकिन मानस एक आरोहणिका है, एक एलीवेटर. यह एक साधारण पायदान नहीं है, यह एक चल सोपानिका है. यह रैंप नहीं है कि जिसमें

प्रदर्शन या दिखावे या इतराहट का विपणन होता है. यह 'लिफ़्ट करा दे' की इच्छा को पूरा करती है लेकिन 'बंगला, मोटरकार दिला दे' के लिए नहीं बल्कि इनसे भी ऊपर और बेहतर के लिए. तुलसी महदिच्छा के क़तई ख़िलाफ़ नहीं जाते. वे उसके कट्टर समर्थक हैं. लेकिन इच्छा के महत् को पहचानने का विवेक ज़रूर जागना चाहते हैं कि हम चीन्ह सकें महत्व किसका है. जिसे हम महत्वपूर्ण समझ रहे हैं, कहीं वह हमारा दृष्टिभ्रम तो नहीं. सोपान शब्द मात्र से वे ऊर्ध्वदृष्टि का सम्मान करते दिखते हैं. सर्ग की जगह सोपान व्यवस्था रखकर वे एक मनोरथ की स्थापना करते हैं कि जीवन भटकन नहीं है, यात्रा है, कि जो आकांक्षा भटकाए, वह महत्वाकांक्षा नहीं हो सकती. आम आदमी की महत्वाकांक्षा की परिणति फल है, तुलसी की महत्वाकांक्षा की परिणति फूल है. फल भोग है, फूल प्रार्थना है. तुलसी फलागम और प्रतिफल के रूप में जीवन की सिद्धि को नहीं पहचानेंगे, वे उसे कृतकार्यता और चरितार्थता के रूप में आँकेंगे. इस रूप में वे उच्चाशयी हैं.

पता नहीं क्यों तुलसी जैसे भक्त कवियों के बारे में, उनके निर्वेद के बारे में यह प्रवाद फैलाया गया कि वे पलायनवादी थे. यह व्यक्ति जो जीवन को ऊँचे चढ़ने के क्रम में देखता है, कैसे निराकांक्ष और निरभिलाषी हो सकता था? लेकिन ऊँचे जाने के चक्कर में कहीं हम रसातल को न पहुंच जाएँ, इसकी सावधानी उसे थी. मुकुट बिहारी सरोज की पंक्ति हैः 'ख़ूब हैं ऊँचाइयाँ नीचाइयों की'. कई बार ऊँचा जाना एक प्रयत्न मात्र बल्कि प्रयत्न का संभ्रम मात्र होता है. बर्टन ने कहा है कि महत्वाकांक्षी मनुष्य बहुत परिश्रम और सतत चिन्ता के साथ ऊपर चढ़ता है लेकिन कभी शिखर पर नहीं पहुंचता (Ambitious men still climb and climb, with great labour and incessant anxiety, but never reach the top). तुलसी का 'मानस' हमें इसी के प्रति ख़बरदार करता है. एलिस इन वंडरलैंड की विचित्र स्थिति के प्रति जहां हम हमेशा कहीं जाते हुए प्रतीत होते हैं किन्तु पहुंचते हुए कभी नहीं. आम महत्वाकांक्षा हमारे टुच्चेपन और क्षुद्रता का सार्वजनिक पता देती है. आम महत्वाकांक्षा दरअसल यह बताती है कि हम कितने नीच हैं. तुलसी जिन सोपानों से हमें लेकर आ रहे हैं वे हमें हमारे सौन्दर्य और वरिमा का पता देते हैं. आजकल तो ऊँचाइयों पर पहुंचने के लिए लोग कितना भी नीचे गिरने को तैयार हैं. ऊँचा उठने के चक्कर में वे रेंगते हैं, चरणों में गिरते हैं. तुलसी जिस उत्तुंग शिखर पर हमें ले जाते हैं वहां शिखर उत्तुंग ही नहीं है - उसका यात्री भी उतना ही उदात्त वहां तक पहुंचते-पहुंचते हो जाता है.

> सोपान शब्द चुनकर तुलसी मनुष्य को अग्निधर्मा बनाना चाहते हैं. मनुष्यता का विकास ही तब हुआ जब अग्नि का आविष्कार हुआ. मनुष्यता का विकास ही तब हुआ जब प्रमथ्यु देवताओं के यहां से अग्नि चुरा लाया.

सोपान की तरह ऊर्ध्वारोहण अग्नि का भी धर्म है. सोपान शब्द चुनकर तुलसी मनुष्य को अग्निधर्मा बनाना चाहते हैं. मनुष्यता का विकास ही तब हुआ जब अग्नि का आविष्कार हुआ. मनुष्यता का विकास ही तब हुआ जब प्रमथ्यु देवताओं के यहां से अग्नि चुरा लाया. अग्नि लगातार ऊपर जाती है. ईंधन ही रॉकेट को ऊपर प्रक्षेपित करता है. अर्नाल्ड एच ग्लासगो ने कहा था कि सफलता कोई स्वतःस्फूर्त प्रज्ज्वलन (Spontaneous combustion) नहीं है. उसकी सलाह थी : ज्ञ्द्व ध्ड्डद्य द्धड्डध्य ज्ञ्द्वद्धद्धद्यड्डथ्ढ द्दद ढत्थ्ड्ड तो ऊर्ध्वारोहण तब तक नहीं होगा जब तक आपके दिल में आग नहीं लगी हो. मनुष्य रश्मिरथी है, वह आलोकधन्वा है. अग्नि उसी तेज़, उसी आलोक की परिचायिका है. सोपान कहकर तुलसी यह स्थापित करते हैं कि आदमी की परिभाषा ही उसका लक्ष्याधारित होना है. वह एकमात्र ऐसा प्राणी है जो लक्ष्याधारित है. उसके होने की सार्थकता ही इसमें है कि वह सिर्फ़ है नहीं, कुछ हो रहा है, कुछ होना चाहता है. जो हम हैं वह ईश्वर का हमें दिया गया उपहार है. जो हम हो जाते हैं वह हमारे द्वारा ईश्वर को दिया गया उपहार है.

आकाश किसलिए बना, यदि हम मुट्ठी ऊँची कर उसे अपनी पकड़ में नहीं लेना चाहें. आकाशगामी हनुमान समुद्र संतरण के माध्यम से यही संदेश देते हैं. मनुष्य प्रतिभा की कमी से असफल नहीं होता, सोद्देश्यता की कमी से असफल होता है. मनुष्य का जीवन सोद्देश्य और सार्थ है भी, मनुष्यता की विशेषता ही यह है. ग़रीब वह नहीं कि जिसके पास एक भी सिक्का नहीं है, ग़रीब वह है जिसके पास एक भी स्वप्न नहीं है. अ ड्रीम विद अ डेडलाइन. सुन्दरकांड के पूर्व हनुमानजी उसी स्थिति में पहुंच चुके हैं. सुग्रीव ने साफ़-साफ़ कहा है : 'अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाएँ; वानरों के लिए यह शब्दशः डेडलाइन है. हनुमान जो स्वयं को भूले से रहते थे, अब उनके पास एक स्वप्न है और एक टाइमफ्रेम भी. वे एक मिशन स्टेटमेंट के साथ हैं.

आदमी की जिन्दगी में दो ही दिन महत्वपूर्ण हैं : एक तो वह दिन जब वो पैदा हुआ और दूसरा वह दिन कि जब वह खोज ले कि वह क्यों पैदा हुआ. उस दिन उसका दूसरी बार जन्म हुआ. उस दिन वह द्विज बना. जब हमारे अस्तित्व का अर्थ हमें पता लग जाए तब हमारा जीवन जीवन हुआ. उत्तिष्ठत् (उठो) का वैदिक आह्वान ऊपर उठाने के लिए भी है. सोपान शब्द कहकर तुसली भी यही आह्वान करते हैं. सोपान शब्द में ही एक चुनौती है. यह कोई सगरमाथा है जिसे

चढ़ना है. यह कोई मनुष्यत्व का माउंट एवरेस्ट है. यह कोई चरित्र की चोटी है. क्या पाठक इसकी उच्चता का अवलोकन करेंगे? उठाएँगे इसका बीड़ा? मेरे एक मित्र हैं उन्हें संस्कृत शब्दों का देसी तरह से अर्थ निकालने में मज़ा आता है. सोपान के पान को इसी बीड़े की तरह लेते हुए उन्होंने कहा कि यह तो सौ बीड़ों, सौ चुनौतियों वाला सोपान है या जो है सो बीड़ा ही है. अपने आप में एक चुनौती. तो मानस अपने पाठक को रचनात्मक हुंकार के साथ बुलाता है. सुन्दरकांड उसी चुनौती से साक्षात्कार है. यह हनुमानजी की ट्रिस्ट विद् डेस्टिनी है.

सुन्दरकांड में हनुमान उसी चुनौतीपूर्ण यात्रा पर रवाना होने वाले हैं. सोपान कहकर दरअसल तुलसी ने पूरे जीवन को ही यात्रा कहा है. लोग कह सकते हैं इसमें ऐसी कौनसी ख़ास बात हो गई? जब हम किसी की मृत्यु पर कहते हैं कि 'वह गुज़र गया' तब भी क्या जीवन के इसी यात्रा-भाव का स्वीकार नहीं है. पता नहीं कितनों को ज्ञात है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के समय नाज़ी लोग अपनी ह्यूगो बॉस यूनिफॉर्म में घूमते थे, इस नारे के साथ-साथ कि लाइफ़ इज़ अ जर्नी, किल द ज्यू. अब ह्यूगो बॉस जींस के विज्ञापन का भी सिद्धांत वाक्य यही है : लाइफ़ इज़ अ जर्नी, ट्रेवल लाइट. जापानी मिलिट्री ने निसान जीपों का द्वितीय विश्वयुद्ध में बहुत उपयोग किया था. आज निसान का टीवी विज्ञापन इस सिद्धांत वाक्य के साथ आता है : लाइफ़ इज़ अ जर्नी, एंजॉय द राइड. जीवन को यात्रा के रूप में विज्ञापित करने के लिए कितनी ट्रेवल एंड टूर कंपनियाँ तैयार मिलेंगी. पर तुलसी की मानस यात्रा किसी बाज़ार की यात्रा नहीं है और वह नस्लकुशी की, जेनोसाइड की यात्रा भी नहीं है. वह यात्रा चरित्र और मानस की यात्रा है. सोने की लंका और लंकादहन का रूपक बिलियन के विरोध का नहीं, बुलियन के विरोध का रूपक है. कनक-कोट लंका की पहचान की शुरुआत ही नहीं, प्राथमिक शब्द भी है. सोने का क़िला राम के उस जनतंत्र के ठीक उल्टा है जो जंगलों में रहने वाले आदिम जनवर्गों और सर्वहाराओं की खुली संगोष्ठी है. क्या आप समझते हैं कि सोना आपकी रक्षा कर सकेगा? फेल्थम ने लिखा है कि सोना मूर्ख का पर्दा है (Gold is fool's curtain) यहां तो वह कर्टेन नहीं, कोट है. पर्दा नहीं, दुर्ग है. तब भी क्या यह हमारे पापाचार को छुपा पाएगा, बचा पाएगा?

रॉबर्ट फ्रॉस्ट की कविता 'द ओवन बर्ड' का केन्द्रीय रूपक भी जीवन की यात्रा का है, तब इस तुलसी में क्या ख़ास बात है?

फ़र्क़ संस्कृति से पैदा होता है. तुलसी के सोपान उत्तरोत्तर उन्नति और विकास के सोपान हैं. वहां उत्थान है, फॉल नहीं. आदम और ईव की तरह ईडन के बगीचे से पतन नहीं, गिरने का अपराध-बोध नहीं. भारतीय मनीषा के वे प्रतिनिधि कवि

लाइफ़ इज़ अ जर्नी, एंजॉय द राइड. जीवन को यात्रा के रूप में विज्ञापित करने के लिए कितनी ट्रेवल एंड टूर कंपनियाँ तैयार मिलेंगी. पर तुलसी की मानस यात्रा किसी बाज़ार की यात्रा नहीं है और वह नस्लकुशी की, जेनोसाइड की यात्रा भी नहीं है.

मात्र नहीं हैं, वे इस मनीषा के किसी अंश तक बनावनहार कवि भी हैं. इसलिए जीवन पतन है, उत्थान नहीं; यह बात तुलसी के यहाँ संभव ही नहीं. इस प्रथम शब्द सोपान से ही वे भारतीयता के उस सांस्कृतिक प्रति-ध्रुव को स्थापित करते हैं जो जीवन को विकासवादी मानता है. भारत में तो अवतार भी डार्विन के-से विकासवादी क्रम से हुए. पहले मत्स्य जो जल में आया, फिर कूर्म जो जल और थल दोनों में रह सकता था, फिर वराह जो कीचड़ को भेदने में समर्थ था, फिर नृसिंह जो पशु और मनुष्य के बीच की अवस्था है, फिर वामन. एकदम से पूर्ण मनुष्य नहीं हुआ. एकदम से कोई आयाम-अंतरण नहीं हुआ. जो हुआ वह धीरे-धीरे. जो हुआ वह क्रमशः. आगे की ओर देखता हुआ. कहा जा सकता है कि सतयुग से कलयुग की यात्रा पतन की ओर की यात्रा है. लेकिन युग भारत में समय के सोपान हैं और समय/काल की गति भारत में रैखिक (लीनियर) न होकर वर्तुलाकार (सर्कुलर) है. इसीलिए सतयुग जितना अतीत है उतना भविष्य भी. इसलिए इस संस्कृति में ग्लानि भाव नहीं है. अपराध-बोध तो अन्तःकरण पर उसी तरह का कार्य करता है जिस तरह से लोहे पर जंग असर दिखाती है. जीवन की धातु को ही ग्लानि-ग्रंथि से निकलता हुआ यह रस क्षरित कर देता है. सिम्स कहते हैं: It was the redeeming promise in the fault of Adam, that with the commission of his crime came the sense of his nakedness. आदम के मूल अपराध में यह संदेश छुपा हुआ है कि अपराध के होने के साथ ही अपने नंगे होने का अहसास भी उसे आया. तुलसी के मानस में जो सोपानिक व्यवस्था है वह क्रमशः और सतत प्रगति की ओर हमें अग्रसर करती है. मैं इस बहाने कोई झूठा अद्वितीय सांस्कृतिकतावाद प्रचारित नहीं करना चाहता. एडम/ईव की कथा से पहले एनैक्सीमेंडर, एनैक्सीमेनेस, एम्पेडोक्लीस, थेल्स, अरस्तू आदि विद्वानों ने विकासवादी व्याख्याएँ दी थीं. स्वर्ग अतीत नहीं है, मनुष्य के सत्कर्मों का भविष्य है. लामार्टिन के अनुसार आदमी एक ऐसा गिरा हुआ देवता है जिसे स्वर्ग की स्मृति है. लेकिन भारत में स्मृति की तरह स्वर्ग को नहीं देखा जाता, आकांक्षा की तरह देखा जाता है. स्वर्ग से निष्कासन का दंड नहीं भुगत रही है मनुष्यता. हमारे यहां

धरती पर लोग फेंके नहीं गए, अवतरित हुए. बल्कि रामकथा तो एक दूसरा ही आयाम हमारे सामने लाती है. राम का पृथ्वी पर अवतरण तो साभिप्राय है ही, वानर, भालुओं, रीछ आदि का भी पृथ्वी पर आना सोद्देश्य है. वे देवताओं के अंश हैं. उन्हें, कथा कहती है कि, पृथ्वी पर राम की सहायता के लिए आने का आदेश दिया गया है. इसी पृथ्वी पर. प्लेनेट ऑफ़ द एप्स की तरह उनका कोई स्वतंत्र ग्रह नहीं है. 'बानर तनु धरि धरि महि हरि पद सेवहु जाइ.' पशुपति के देश में बीस्ट की अवधारणा संभव ही नहीं है. यदि सुन्दरकांड जैसी कथा पश्चिम में होती तो सीता और हनुमान को लेकर उनकी कथा 'ब्यूटी एंड द बीस्ट' से आगे कुछ सोच ही नहीं पाती. शुक्र है कि यह भारत है. हमारे यहां पशु और मनुष्य की संयुक्ति की पूजा है. नृसिंह से लेकर हनुमान तक. हमारे हनुमान ज्ञानिनामग्रगण्यम् हैं. वहां पश्चिम में बीस्ट की स्थिति डेविल से कुछ ही कम है. हमारे यहां सिंगापुर जैसी स्थिति कभी न होगी कि शहर से सारे पशु मार डाले जाएँ, प्रतिबंधित या निर्वासित कर दिए जाएँ. हमारे यहां तो पशु और मनुष्य का सहअस्तित्व चलता है, हालाँकि उसे सड़कछाप बनाने की ज़रूरत नहीं है. लेकिन महत्वपूर्ण बात जो इस रामकथा से रेखांकित होती है वह है पशु में भी दिव्यत्व के दर्शन. विदेशी कहते हैं कि हम भारतीय मंकी-गॉड और एलीफेंट गॉड को पूजते हैं और मनोज कुमार की फ़िल्म पूरब और पश्चिम में नायिका सायरा बानो दीवारों पर उनके चित्र देखकर शॉक्ड भी महसूस करती है. लेकिन भारत में यह इसलिए नहीं होता कि हम सभ्यता की आदिम अवस्था में हैं या यह गुहामानव की श्रद्धाओं का कैरी-ओवर है. यह इसलिए होता है कि हमारी नज़र में जीवन की दिव्यता पशुओं में भी उतनी ही प्रतिबिम्बित होती है जितनी मनुष्यों में. उनकी आत्मनिर्भरता और अन्योन्याश्रय पृथ्वी पर जीवन-चक्र की सम्पूर्ति है. मात्र फूड चेन की तरह नहीं. जीवो जीवस्य भोजनम् की तरह नहीं. संज्ञानात्मक और प्रज्ञात्मक तरीक़े से. बोधिसत्व पिछले कई जन्मों में जानवरों की योनि में हुए, तब भी उनमें बोधि है और सत् भी. यहाँ पशु सिर्फ़ चमड़ा या दाँत की तरह कमोडिटी में रूपांतरित नहीं किया जाता. पशु होना वहशी होना नहीं है. पशु और मनुष्य का संयोग उस तरह का नहीं है कि आदमी कितना ही सुसंस्कृत क्यों न हो जाए उसके भीतर एक वहशी बचा रहता है. (जैसा कि कॉलरिज ने कहा है कि जैसे आदमी के भीतर बहुत पशु और कुछ शैतान है वैसे उसके भीतर कुछ देवदूत और कुछ ईश्वर भी है (As there is much beast and some devil in man, so there is some angel and some god in him) बल्कि यह है कि उनमें प्रकृति और संस्कृति का मेल है, प्रवृत्ति (इन्सटिंक्ट) और संस्कार का. पशु ईश्वर के बनाए नियमों-निर्देशों का अवचेतन और निःसंकोच पालन करते हैं. इन्सटिंक्ट तो दिव्य है ही. वह चींटी, मधुमक्खी और पक्षी तक में मौजूद है. मनुष्य की मुक्ति तब तक संभव नहीं जब तक वह अपने विश्व के इस प्रकृत देवता का अनादर करता है. कॉलरिज पशु और मनुष्य में फ़र्क़ आत्मा (Soul) के आधार पर करता है. एक में नहीं है, एक में है. लेकिन भारतीय प्रतिभा उतनी पक्षपाती नहीं है. वह ईश्वर को मनुष्य की ही इमेज में नहीं देखती. वह इतनी ज़्यादा छवियों में उसे देखती है कि वह सर्वरूप ही है. निराकार और साकार के पारम्परिक भेदों से ऊपर उठकर यह प्रतिभा निराकार और सर्वाकार का आयामी द्वैत देती है. जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जान. यह पोलीथीज़्म नहीं है क्योंकि पोली का अर्थ बहुत है, सर्व नहीं. सर्वभूतेषु और सर्वेषु का विचार बहुमत के प्रजातंत्र से हमें सर्वे भद्राणि पश्यन्तु के आदर्श तक ले जाता है.

> *हमारे हनुमान ज्ञानिनामग्रगण्यम् हैं. वहां पश्चिम में बीस्ट की स्थिति डेविल से कुछ ही कम है. हमारे यहां सिंगापुर जैसी स्थिति कभी न होगी कि शहर से सारे पशु मार डाले जाएँ, प्रतिबंधित या निर्वासित कर दिए जाएँ.*

यह तो एलीगरी हुई, पर हनुमान और गणेश सिर्फ़ प्रकृति के रूपक नहीं हैं. वे संस्कृति की निर्मिति में शामिल हैं. गणेश तो महाभारत के लेखन-कार्य में हिस्सा बँटाने वाले हैं, हनुमान वेद-विशारद. क्या हाथी और बन्दर के रूप में उनकी पहचान उनके साथ अन्याय नहीं है? भारतीय पौराणिकी उनके प्रकृति के साथ-साथ उनकी बुद्धि, विद्या और विवेक की भी कायल है. सुन्दरकांड का सोपान हनुमान की नैसर्गिक प्रवृत्ति, विलक्षण शक्ति और बौद्धिक प्रखरता का सोपान है. यह वह व्यक्ति नहीं है जो सूर्य की ओर उड़कर अपने पंख जला ले. यह रुद्र अपने बचपन के सहज कौतूहल में सूर्य से क्रीड़ा कर चुका है. सम्पाति की तरह इसके पंख-पत्र झरे नहीं हैं. बचपन का कौतूहल अब बढ़कर संकट मोचक हो चुका है. इसकी वह बाल-क्रीड़ा वस्तुतः उसकी ज़बर्दस्त जिज्ञासा का प्रतीक है. यह ज्ञान की भूख है जो सूर्य को मुख में रखने की कथा से रूपायित होती है. लॉक ने यही तो कहा था : बच्चों में जिज्ञासा ज्ञान के लिए भूख मात्र है (Curiosity in children is but an appetite for knowledge). ज्ञान से प्रकाश मिलता है, गर्मी नहीं. लाइट मिलती है, हीट नहीं. इसलिए कथा में कहा गया कि सूर्य ने उन्हें जलाया नहीं. भारत में जिज्ञासा का यों दंड नहीं मिलता कि ज्ञान का सेब खाने पर आदम-हौवा का स्वर्ग से निष्कासन हो जाए. भारत में तो जिज्ञासा के वरदान प्राप्त होते हैं जो हनुमान को भी मिले.

> सोपान एक शिल्पशास्त्रीय रूपक भी है. तुलसी-दर्शन की यह शिल्पशास्त्रीय निर्भरता इस मायने में महत्वपूर्ण है कि यह शास्त्र व्यवस्था व क्रमबद्धता का ही मूर्तिमान स्वरूप है.

इन्द्र के वज्र और शिव के ब्रह्मास्त्र से सुरक्षित रहने के वरदान. यहां सेब नहीं, सूर्य खाया था, मुँह में रखा था उन्होंने. इसी मेटाफर में आगे सूर्य को उनका गुरु कहा गया. बचपन से ही भारी इन्क्वीज़िटिव उसी हनुमान की यह कथा-सोपानिका है. यह सोपान ईविल के लोकस का पता लगाने का सोपान है. यह सत्य की शक्ति की ओर से न केवल आशीष बल्कि हेडलाइन पाने का सोपान है. इस ईविल का लोकस वही पता लगा पाएगा जिसमें उतनी प्रबल जिज्ञासा हो जो उसे बचपन में ही आकाश की ओर उड़ाकर ले जाए. शेक्सपीयर ने सम्भवतः इसीलिए कहा था- ज्ञान वह पंख है जिसे लगाकर हम आकाश (स्वर्ग) की ओर उड़ते हैं (Knowledge is the wing wherewith we fly to heaven). यह वह व्यक्ति है जिसके लिए ज्ञान समय की परिणति (Consequence of time) नहीं है बल्कि बाल्यकाल की प्रबल अभीप्सा के रूप में प्रकट हुआ है. इसलिए आकाश की ओर बचपन में ही प्रस्थान करने वाला यह व्यक्ति ज्ञान-गुन-सागर बना और अब इसकी सागर यात्रा प्रारम्भ होने को है. ज्ञान की भूख- जिज्ञासा- सूरज जैसे काज़िमक पिंडों के प्रति ही होती है. हर बच्चे में होती है. सामान्यतः ज्ञान का सिद्धांत ही यही है कि जो चीज़ अपने दैनन्दिन अनुभव और कन्सर्न से जितनी दूर और असम्बद्ध होती है- बच्चे की जानने की इच्छा उसी के प्रति सबसे प्रबल होती है. बच्चों में कॉस्मोलाजी के प्रति ज़्यादा रुचि का कारण कहीं इसी मनोविज्ञान में है. कई लोग ज्ञान की "प्रासंगिकता" की बात करते हैं, कि लोगों को ज्ञानोन्मुखी बनाना है तो विद्या को 'तात्कालिक' बनाना होगा, लेकिन वे ग़लत हैं और इस बाल मनोविज्ञान को नहीं समझते कि जिज्ञासा का तीव्रतम वेग 'तत्काल' के प्रति नहीं, 'सुदूर' के प्रति होता है. महादेवी की एक कविता ऐसी ही है :- 'तोड़ दो यह बंध मैं भी/देख लूँ उस ओर क्या है/जा रहे जिस पंथ से युग/कल्प उसका छोर क्या है.' हनुमान की जिज्ञासा भी वैसी ही रही होगी. ज्ञान 'तत्काल' के प्रति नहीं, अस्तित्व के आदि मूलों के बारे में सबसे शिद्दत से जानना चाहता है. इसीलिए डायनासोर के बारे में बच्चों में इतना आकर्षण और उत्सुकता देखी गई. वे जानना चाहते हैं कि खगोल का मूल क्या है? इस मूल की तृषा- हनुमानजी के संदर्भ में कहें तो भूख- ही बच्चे को मौलिक बनाती है. हनुमान यदि सूर्य को जानना चाहते हैं तो वे किसी पिण्ड को नहीं, उसके बहाने इस ब्रह्माण्ड क जानना चाहते हैं? क्यों ये गोलक बने हैं? उसे रोटी समझकर मुँह में रखने का प्रतीक बहुत मीठा है. जिस तरह से रोटी गोल है, उसी तरह से यह खगोल भी, इसके पिंड भी. हनुमान किसी 'सितारे' के बारे में जानने के लिए बेचैन एस्ट्रोफिज़िसिस्ट नहीं हैं, वे तो कॉस्मॉस को- जगत को- जानना चाहते हैं, एक कॉस्मालाजिस्ट की तरह. वे 'ट्विंकल ट्विंकल लिटिल स्टार/हाऊ आई वंडर व्हाट यू आर' की तरह सूर्य की सितारा-हैसियत के प्रति ही कौतूहल से बिद्ध नहीं हैं बल्कि उस बाल-मानसिकता के भी प्रतीक हैं जिसमें खण्ड चेतना नहीं होती. इस कारण वे 'यूनिवर्स' की 'यूनिटी' को जानना चाहते हैं. यत्पिंडे तत्ब्रह्मांडे. जो सूर्य के इस पिण्ड में होगा, वही ब्रह्माण्ड में होगा. लेकिन है यह पिण्ड ही, इकाई ही, समग्र नहीं. इसलिए किसी भी भव्य रोटी की तरह उसे मुँह में रख लिया बताया गया है. ध्यान देने की बात यह भी है कि हनुमान सूर्याराधन नहीं कर रहे. वे सूर्य का विज्ञान जानना चाह रहे होंगे तो वे सूर्य-सैद्धांतिकी के पीछे पड़ेंगे, सूर्य-पूजन के लिए व्यग्र नहीं होंगे. वे ऊष्मा का और आलोक का जीवन-विज्ञान समझेंगे. उसका भजन नहीं करेंगे. कृष्ण यदि इन्द्र-पूजन के विरुद्ध गोवर्धन-प्रसंग खड़ा करते हैं, हो सकता है हनुमान सूर्य-पूजन के विरुद्ध अपनी बाल-असहमति दर्ज़ करा रहे हों. क्या यह आश्चर्य नहीं कि 'सूर्य' के साथ इस व्यवहार से इन्द्र चिन्तित होकर हनुमान की ठोड़ी पर वज्र घात करते हैं. हनुमान कह रहे हैं कि पूजा की बात नहीं है, जिज्ञासा की बात है. रोटी जैसा यह गोलक क्या है? क्या गोलक की बात वस्तुतः 'सर्कुलेटरी मोशन ऑफ़ मॉस' की बात है? क्या वह किसी तरह का साइक्लिक लॉ है- कोई वर्तुल-विधि? क्या यह 'ओरोबोरोस' (ouroboros) की तरह का कोई प्रतीक है (जहां प्रकृति के वर्तुलाकार स्वरूप को सूर्य के अपनी ही पूँछ को निगलने के ज़रिए दिखाया जाता है)? क्या प्रकाश ऊर्जा और संहति का वृत्त है? वृत्त है तो कंज़र्वेशन है. क्या गुरुत्वाकर्षण इस वर्तुल से ही है? हनुमान सन-वरशिप नहीं करते, इस कारण देवता घबरा जाते हैं, लेकिन हनुमान जो कर रहे हैं, उसे हम सनशिप कह सकते हैं. रोमन साम्राज्य की पौराणिकी में 'सोल इन्विक्टस' (अपराजित सूर्य) की चर्चा है. हनुमान इसी अपराजित सूर्य को पराजित करते हैं. क्या यही हीलियोसेन्ट्रिक जीवन-विज्ञान की पराजय थी जहां सृष्टि का केन्द्र और मूल सूर्य को माना जाता था? क्या यह सम्पूर्ण प्रसंग ज्ञानाकांक्षा से संबंधित नहीं है? क्यों हनुमान सूर्य से अपने को विद्यार्थी के रूप में स्वीकार करने का आग्रह करते हैं? जब सूर्य उस आग्रह को इस आधार पर अस्वीकार करते हैं कि वे एक जगह नहीं ठहरते और उनका रथ चक्र निरंतर परिभ्रमण करता रहता है तो हनुमान अपने शरीर का दिगंतस्पर्शी विस्तार कर पुनः प्रार्थना करते हैं. उनके हठ से

प्रसन्न सूर्य उनका शिष्यत्व स्वीकार करते हैं. हनुमान उनके साथ निरंतर चलते हुए सारी विद्याएँ सीखते हैं और गुरु दक्षिणा के रूप में सूर्य उनसे अपने आध्यात्मिक पुत्र सुग्रीव की सहायता करने का संकल्प लिवाते हैं. चीनी पौराणिकी में भी एक सन हौजी (Sun Houzi) नामक वानर है जो देव-नायक (God hero) है. जापान में भी बन्दर बुद्धिमत्ता के प्रतीक हैं. आम बच्चे जिस उम्र में चंदामामा माँगते हैं, उस उम्र में सूर्य के प्रति विलक्षण आकर्षण रखने वाले इसी प्रोडिजी को ही अब यह सफ़र तय करना है. जिस उम्र में स्वयं उनके जीवन का सवेरा था, उस वक्त बाल रवि की ओर दौड़ पड़ने वाले हनुमान अब एक और अभियान को आरंभ करने जा रहे हैं. पता नहीं वे कौन लोग थे जिन्होंने समुद्र पार जाने की वर्जनाएँ पैदा कीं? इस देश का सांस्कृतिक आदर्श तो समुद्र-संतरण करने वाल नुमान का है. क्या यह अंधविश्वास प्रतिभा-पलायन रोकने का एक सामाजिक दबाव है? लेकिन किसी अनुसंधित्सु को समुद्र पार जाने दें तो ब्रेन ड्रेन नहीं, ब्रेन गेन भी होता है. हनुमान जो इन्टेलीजेन्स लाकर राम को देते हैं वह राम की ऊर्जा को एक दिशा और एक केन्द्र देता है. राम भी उनकी महत्ता जानते हैं, इसलिए वानरों को विदा करते समय हनुमान को विशेष व्यवहृति देते हैं: पाछें पवनतनय सिरु नावा. हनुमान नॉन रिटर्निंग इंडियन नहीं हैं, वे एक योजना, एक लक्ष्य, एक संकल्प के साथ समुद्र पार जा रहे हैं. उन्हें अपनी जड़ों की ओर लौटना है- श्रीराम के चरणों में ही उनके अस्तित्व की जड़ें हैं. यह लंका प्रवास तो उनके जीवन का एक अध्याय मात्र है. एक फ़ेज, एक सोपान. यह जीवन नहीं है. वे कनक कोट का मर्म-भेद करने के लिए जा रहे हैं, उसमें क़ैद होने के लिए नहीं. सोने का क़िला कितना ही आकर्षक क्यों न हो, है वो क़िला ही. वह आपको शेष से काटता है. वह है एक डिस्टेंसिंग रचना. सारी दुनिया से आप धन लूटकर अपने यहां भर लेंगे- कुबेर आपकी ही सेवा में होंगे. लेकिन कुछ है जो शेष रह जाएगा, वो शेष आपके साथ नहीं जाएगा. वो शेष नारायण के साथ खड़ा रहेगा, उनके छोटे भाई की तरह. आपका क़िला आपका एकांत रचेगा. सत्ताधारी का एकांत जो ग्रैब्रियल गार्सिया मार्केज के अनुसार सबसे विकट एकांत होता है. इस अर्थ में कि उसका कोई मित्र नहीं होता, उसके या तो शत्रु होते हैं या चाटुकार. राम वह है जिसका आश्रय शेष है, रावण वह है जिसे यह शेष चुनौती दे रहा है. आवा कालु तुम्हार. जो बाक़ी रह गए हैं, जो पीछे छूट गए हैं, जिन्हें किसी गिनती में नहीं लिया गया, नारायण उन्हीं वंचितों के निकट सान्निध्य और संश्रय में हैं. हनुमान इस युगल मूर्ति के सेवक हैं. वे समन्दर पार जाएँगे लेकिन उसके पास लौटने के लिए जो प्रभु के साथ शेष रह गए हैं. यह लौटना प्रतिगामी नहीं है क्योंकि वे - 'हियँ धरि रघुनाथा' मार्च कर रहे हैं, डिपार्ट नहीं हो रहे हैं.

सोपान एक शिल्पशास्त्रीय रूपक भी है. तुलसी-दर्शन की यह शिल्पशास्त्रीय निर्भरता इस मायने में महत्वपूर्ण है कि यह शास्त्र व्यवस्था व क्रमबद्धता का ही मूर्तिमान स्वरूप है. सोपान शब्द को तुलसी एक उदाहरण की तरह काम में नहीं लेते, वह सशक्तिकरण का उनका यंत्र है. इस मायने में तुलसी के सोपान और हिचकॉक की फ़िल्मों में दर्शाई सीढ़ियाँ एक-दूसरे के ठीक उलट हैं- हालाँकि दोनों में ही अज्ञात (unknown) की ओर बढ़ना है. हिचकॉक की फ़िल्मों की सीढ़ियाँ हमेशा मुसीबत की ओर ले जाती हैं. सुरक्षा से एक अज्ञात आफ़त की ओर. १९४६ में प्रदर्शित उनकी फ़िल्म 'नोटोरियस' की सीढ़ियों को याद करें, 'वर्टिगो' में मैक्किट्रिक होटल की सीढ़ियों को याद करें, 'साइको' में बेट के घर की सीढ़ियों को- भय क्रमशः बढ़ता चला जाता है. तुलसी के सोपान हमें भौतिक जगत के अनैश्चित्य और विद्रूप से क्रमशः ज़्यादा से ज़्यादा मुक्ति और आश्वस्ति की ओर ले जाते हैं. हमें क्रमशः सशक्त करने के लिए जबकि हिचकॉक की सीढ़ियाँ हमें हर पायदान पर और कमज़ोर करती हैं. सोपान के आध्यात्मिक सन्दर्भ, ऐसा नहीं कि, तुलसी ने ही इस्तेमाल किए हैं. राफेल ने अपनी पेंटिंग्स में भी इस्तेमाल किए हैं, इस्तंबूल में करिअ जामी (Kariya Djami) चर्च में जैकब्स लैडर (याकूब की सीढ़ियाँ) के नाम से एक भित्तिचित्र है. 'लास्ट जजमेंट' और संतों के नाट्य में सीढ़ियाँ सात्विक आदमी के ऊर्ध्वारोहण के साधन के रूप में काम आई हैं. लौरेटो चैपल, १८७७ से १८८१ के बीच कभी बना, में विश्वविख्यात चमत्कारिक सीढ़ियाँ हैं जो कहते हैं स्वयं संत जोसेफ के चमत्कार से बनी हैं. किन्तु तुलसी के सोपान सिर्फ़ उन्नति नहीं है, उद्देश्य हैं. वे राम के जीवन की प्रगति-यात्रा इन सोपानों के माध्यम से नहीं कहते, स्वयं भक्त के विकास के लिए इन सब कांडों के सोपान दे रहे हैं. गणित में डेविल्स स्टेयरकेस के नाम से एक गुत्थी चलती है. तुलसी के राम के सोपान तो सारी गुत्थियों और ग्रंथियों को खोलते हैं. सरल हिन्दी में. भाषा भनिति भोरि मति मोरी. इसलिए तुलसी के सोपान जीवन देते हैं, बीबीसी की आठ पार्ट की सिरीज़ 'डेथ ऑन द स्टेअरकेस' से भिन्न. यहाँ सीढ़ियों पर मौत नहीं होती, जीवन मिलता है, अमर जीवन. मानस के ये सोपान ज्ञान चक्षु खोलते हैं : सप्त प्रबंध सुभग सोपाना/ग्यान नयन निरखत मन माना.

विलियम क्लीमेंस के निर्देशन में १९३९ में 'नैन्सी टू एण्ड द हिडन स्टेअरकेस' फ़िल्म बनी थी. शुक्र है कि तुलसी के सोपान 'खुफ़िया' नहीं, उद्घाटित हैं. हम आप सबके लिए. श्रीकृष्ण सरल ने तुलसी मानस नाम से एक काव्य लिखा है जो स्वयं तुलसी के जीवन को बालकांड, अयोध्या कांड आदि में दिलचस्प रूप से विभाजित करता है. यहां श्रीकृष्ण सरल सोपान के इस दर्शन को प्रतिपादित करते हैं :

साहित्य धुआँ होता कवि की पीड़ा का
ऊँचा ही ऊँचा वह उठता जाता है
साहित्य, नहीं जल सदृश निम्नगामी है
आयाम सदा वह ऊँचे अपनाता है.

■

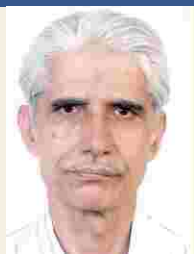

प्रभुदयाल मिश्र

ग्राम बर्माडांग, जिला टीकमगढ़ मध्यप्रदेश में जन्म. सागर विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. महर्षि महेश योगी के साथ आध्यात्मिक पुनरुत्थान आन्दोलन के सिलसिले में संपूर्ण भारत यात्रा. मध्य एशिया के तजाकिस्तान और उजबेगिस्तान गणराज्यों में गीता और भारतीय योग पर व्याख्यान. विभिन्न आध्यात्मिक एवं साहित्यिक संस्थाओं से सम्बद्ध. प्रकाशित कृतियां : सौंदर्यलहरी काव्यानुवाद, सबके लिए गीता, उत्तर पथ, मैत्रेयी, वेद की कविता (वैदिक सूक्तों का काव्यान्तर), वेद की कहानियाँ, तंत्र दृष्टि और सौन्दर्य सृष्टि, योग के सात आध्यात्मिक नियम, ईश्वर का घर है संसार. सम्मान : मध्यप्रदेश संस्कृत अकादेमी द्वारा 'व्यास सम्मान', मध्यप्रदेश लेखक संघ द्वारा 'पुष्कर सम्मान', पेंग्विन पब्लिशिंग हाउस द्वारा 'भारत एक्सीलेन्सी एवार्ड', वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद् द्वारा 'महाकवि केशव सम्मान'. सम्प्रति : अध्यक्ष, महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थानम्, भोपाल.

सम्पर्क : ३५, ईडन गार्डन, राजा भोज मार्ग, भोपाल म.प्र. ४६२०१६ ईमेलः prabhu.d.mishra@gmail.com, www.vishwatm.com

वेद की कविता

माता भूमि और पृथिवी-पुत्र

(काव्यान्तर पृथिवी सूक्त)

(अथर्ववेद- कांड १२, सूक्त १, ऋषि-अथर्वा और देवता पृथिवी)

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्,
स नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ।७।
सभी फल की प्रदात्री
संरक्षित सदा सुर अप्रमादी
विद्वान्, उपकारी जनों से
भूमि
संकल्पित
हमें प्रियतर और हितकर
शौर्य, वैभव दात्री हो.

यामश्विनावमिमातां विष्णुयस्यां विचक्रमे
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः
सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः।१०।
भूमि जिसकी अश्विनी वर वीर ने
परिसीम पाई
विष्णु-विक्रम से जिसे वैभव मिला
इन्द्र ने निर्विघ्न जिसको बनाया है
पयस्विनी पृथिवी बने अब इस तरह
पुत्र की ज्यों एक माता वत्सला.

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद् यां
मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः
यस्या हृदयं परमे व्योऽमन्सत्येनावृतमृतं पृथिव्याः।८।
पूर्व में जो थी कभी
जलमग्न
वैभव भोग मानव बुद्धिग्राही
प्राप्त करता
सत्य से आवृत अमृत उर
जो परम आकाश सुस्थित
भूमि वह
बल कान्ति
उत्ताम राष्ट्र जननी
हमारी हो.

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं
पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्।११।
शिखर, हिमगिरि
वन तुम्हारे, भूमि
स्वस्तिकर हों हमें
श्याम-धवला
रक्तवर्णा, विशाला
अडिग धरती
इन्द्र अभिरक्षित
अजित, अक्षत
अहिंसत हो हमें.

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादुं क्षरन्ति
स नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा।९।
रात दिन समरूप
जिसकी परिक्रमा में निरत
अविरत, अप्रतिहत
वह भूमि
वहु स्रोतस्विनी
दुग्ध धारा बन
हमें अभिसिंचित करे
आलोक निज.

यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्तु ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमि
पुत्रो अहं पृथिव्याः।१२।
मध्य जो पृथिवी
तुम्हारा नाभि स्थल
रस वनस्पतियां तुम्हारी देह पोषित
हमें निर्मल स्वास्थ्यप्रद हों
भूमि माता
पुत्र मानव
पिता है पर्जन्य परिपालक.
■

डॉ. ओमप्रकाश गुप्ता
गणित एवं औद्योगिक इंजीनियरिंग में डिग्रियां. तीस वर्षों से मैनेजमेंट के प्रोफेसर. फिलहाल युनिवर्सिटी ऑफ ह्यूस्टन-डाउनटाउन में सेवारत. पचास से अधिक शोध-पत्र विश्व के नामी जर्नल्स में प्रकाशित. दो मैनेजमेंट जर्नल के मुख्य संपादक एवं कई अन्य जर्नल्स के संपादक. हिंदी पढ़ने-लिखने में रुचि. काव्य-लेखन, विशेषकर सामयिक एवं धार्मिक काव्य लेखन में.
सम्पर्क : om@ramacharit.org

प्रश्नोत्तरी

कौन बनेगा रामभक्त

१. सती के पति कौन थे?
   अ) राम
   ब) शिव
   स) ब्रह्मा
   द) जनक

२. विश्वामित्र के साथ अयोध्या से कौन-कौन गए?
   अ) राम-लक्ष्मण
   ब) लक्ष्मण-भरत
   स) भरत-राम
   द) राम-दसरथ

३. सुमन्त्र कौन थे?
   अ) सुमित्रा के भाई
   ब) दसरथ के भाई
   स) दसरथ के मंत्री
   द) राम के मित्र

४. परशुराम ने अपने पिता के लिए क्या किया?
   अ) माता का वध
   ब) राज्य त्याग
   स) रामजी से विद्रोह
   द) दसरथ से शत्रुता

५. जयंत ने किस रूप में सीताजी के पैर पर चोंच मारी थी?
   अ) कबूतर
   ब) बटेर
   स) कौआ
   द) गिद्ध

६. अपने बनवास में रामजी ने सर्वाधिक समय कहाँ व्यतीत किया?
   अ) चित्रकूट
   ब) पंचवटी
   स) पम्पापुर(सुग्रीव के पास)
   द) लंका

७. सुग्रीव किस पर्वत पर रहते थे?
   अ) चित्रकूट
   ब) हिमालय
   स) ऋष्यमूक
   द) विन्ध्याचल

८. रामेश्वर स्थापन का वर्णन किस काण्ड में है?
   अ) उत्तरकाण्ड
   ब) किष्किन्धाकाण्ड
   स) सुन्दरकाण्ड
   द) लंकाकाण्ड

९. प्रहस्त कौन थे?
   अ) एक ऋषि
   ब) जनक के पुरोहित
   स) रावन का पुत्र
   द) वशिष्ठ के पिता

१०. अयोध्या की किस दिशा में सरयू नदी बहती थी?
   अ) उत्तर
   ब) दक्षिण
   स) पूर्व
   द) पश्चिम

इन प्रश्नों के उत्तर तुलसीकृत रामचरितमानस के आधार पर दीजिये. प्रश्नों के सही उत्तर गर्भनाल के अगले अंक में प्रकाशित होंगे. प्रश्नों के उत्तर तुरंत जानने के लिए kbr@ramacharit.org पर आग्रह किया जा सकता है.

अप्रैल २०१२ अंक में प्रकाशित प्रश्नों के सही उत्तर हैं : १-स, २-ब, ३-द, ४-अ, ५-ब, ६-ब, ७-अ, ८-ब, ९-स, १०-ब.

सही उत्तर भेजने वाले पहले पाँच नाम इस प्रकार है : १. रजनी कपूर, दिल्ली, २. अल्पना खन्ना, ह्यूस्टन, ३. टी.डी. तिवारी, ह्यूस्टन, ४. पद्मकांत खम्भाती, ह्यूस्टन तथा ५. जनक राज, दिल्ली.

गीता के ये श्लोक **प्रो. अनिल विद्यालंकार** (sandhaan@airtelmail.in) द्वारा रचित गीता-सार से लिए जा रहे हैं, जिसमें गीता के मुख्य विषयों पर कुल १५० श्लोक संगृहीत हैं.

विषय : ज्ञान और ज्ञानी

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।।

गीता १५-७

मेरा ही अंश इस जीवलोक में सनातन जीव के रूप में विद्यमान है. वह प्रकृति में स्थित पाँच ज्ञानेन्द्रियों और मन, इन छह इंद्रियों को अपनी ओर खींचता है.

भारत में वैदिक काल से ही मान्यता रही है कि आत्मा और परमात्मा दो सर्वथा अलग प्रकार की सत्ताएँ नहीं हैं. आत्मा न केवल परमात्मा के बहुत निकट है, अपितु उसमें परमात्मा की झलक भी मिलती है. ऋग्वेद १-१६४-२० में आत्मा और परमात्मा को दो पक्षियों के समान बताया गया है जो एक ही वृक्ष पर बैठे हैं. उनमें से एक पक्षी जीवात्मा वृक्ष के फल को स्वाद लेकर खा रहा है जबकि दूसरा पक्षी परमात्मा फल न खाते हुए केवल देखता रहता है. प्रत्येक जीव की आत्मा में भी परमात्मा ही अभिव्यक्त हो रहा है. जब तक मनुष्य की चेतना इंद्रियों और मन की ओर मुड़ी रहती है तब तक उसमें जीवात्मा का रूप रहता है. शान्त दृष्टाभाव आने पर वही चेतना परमात्मा से एकाकार हो जाती है.

जीवलोके : इस जीवलोक में, **जीवभूतः** : जीव बना हुआ, **मम एव सनातनः अंशः** : मेरा ही सनातन अंश, **प्रकृतिस्थानि** : प्रकृति में स्थित, **मनःषष्ठानि** : मन जिनमें छठा है ऐसी, **इन्द्रियाणि** : इंद्रियों को, **कर्षति** : अपनी ओर खींचता है.

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।।

गीता १८-६१

हे अर्जुन, ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में स्थित है, और वह अपनी माया से सब प्राणियों को ऐसे घुमा रहा है मानो वे यंत्र-चालित हों.

इस संसार में जो कुछ भी हो रहा है वह सर्वव्यापक परमात्मा का कार्य है. (यदि परमात्मा वास्तव में सर्वव्यापक है तो इसके सिवाय कुछ और हो भी नहीं सकता). वह परमात्मा संसार की सभी गतियों का, जिनमें मनुष्य के जीवन की सभी गतियाँ भी शामिल हैं, निर्देशन कर रहा है. हम इस बात को नहीं जानते क्योंकि हमारा ध्यान अपने तथाकथित कर्मों का फल भोगने में लगा रहता है. यदि हम अपने कर्मों से अपने आपको अलग करके अंदर जा सकें तो शांति की उस अवस्था में हम पाएँगे कि हमारी अनुभूतियों तथा विचारों और वाणी की सभी गतियों समेत विश्व की सारी गतियाँ उस परमात्मा के द्वारा ही की जा रही हैं जो स्वयं सदा अचल रहता है.

अर्जुन : हे अर्जुन, **ईश्वरः** : ईश्वर, **सर्वभूतानां हृद्देशे** : सब प्राणियों के हृदय प्रदेश में, अर्थात् उनके अन्दर, **तिष्ठति** : स्थित है, और वह, **सर्वभूतानि** : सब प्राणियों को, **यन्त्रारूढानि** : जैसे वे किसी यंत्र पर सवार हों, इस तरह, **मायया** : अपनी माया से, **भ्रामयन्** : घुमा रहा है.

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्ति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।।

गीता १८-६२

इसलिए हे अर्जुन, सब प्रकार से उसी की शरण में जा. उसी की कृपा से तू परम शांति और अमर स्थान पाएगा.

मनुष्य की जीवन-यात्रा का अन्तिम लक्ष्य वही है जहाँ से उसकी यात्रा प्रारंभ हुई थी. अपने जीवन में जो कुछ भी पाने के लिए मनुष्य दौड़ भाग करता है, वह इस आशा से कि अपनी इष्ट वस्तु को पा लेने के बाद उसे शान्ति मिल जाएगी. पर ऐसा होता नहीं है. एक चीज़ को पा लेने के बाद वह दूसरी चीज़ के पीछे भागता रहता है. इस प्रकार उसकी अशांति कभी दूर होने में नहीं आती. मनुष्य को स्थायी शान्ति तभी मिल सकती है जब उसे कुछ ऐसा मिल जाए जिसे पाने के बाद और कुछ पाना शेष न रहे. यह तभी संभव होगा जब मनुष्य का सुख उसके अस्तित्व के साथ ही जुड़ा हो और वह कह सके, 'मैं सुखी हूँ क्योंकि मैं हूँ'. यह परम आनन्द अपने आपको पूरी तरह परमात्मा को समर्पित करके सदा उसके साहचर्य में रहने से ही मिल सकता है.

भारत : हे अर्जुन, **सर्वभावेन** : सभी प्रकार से, **तम् एव शरणं गच्छ** : उस परमात्मा की ही शरण में जा, **तत् प्रसादात्** : उसकी कृपा से, **परां शान्तिम्** : परम शान्ति, और, **शाश्वतं स्थानं** : अविनाशी स्थिति को, **प्राप्स्यसि** : प्राप्त कर लेगा.

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम् अधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

गीता ४-७

जब-जब भी धर्म का ह्रास और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं अपने आपको प्रकट करता हूँ.

जिस शक्ति ने यह संसार बनाया है वह इसे पृथ्वी पर रहनेवाले मनुष्यों के भरोसे छोड़कर अलग नहीं बैठ गई. मनुष्य बहुत ही अपूर्ण प्राणी है और उसके लिए यह पूरी तरह संभव है कि वह समाज के जीवन को इतनी बुरी तरह विकृत कर दे कि फिर उसे सुधारना असंभव हो जाए. लेकिन सौभाग्य से ऐसा होता नहीं है. संसार का इतिहास बताता है कि जब भी कोई समाज अपने पतन की एक बहुत नीची दशा पर पहुँच जाता है तो उसी में किसी ऐसे व्यक्ति या शक्ति का प्रादुर्भाव होता है जो उसे सही रास्ते पर ले आती है. श्रीकृष्ण का यह कथन हमें जीवन के सबसे अंधकारपूर्ण क्षणों में भी आशावान रहने का संदेश देता है. जब हताशा अपनी चरम सीमा पर हो तब भी हम आशा कर सकते हैं कि उद्धार की शक्ति शीघ्र ही प्रकट होकर स्थिति को सम्हाल लेगी और हम और हमारा समाज एक बार फिर विकास के सही मार्ग पर चल निकलेंगे.

भारत : हे अर्जुन, **यदा यदा हि** : जब-जब भी, **धर्मस्य ग्लानिः भवति** : धर्म का ह्रास होता है, **अधर्मस्य अभ्युत्थानं** : और अधर्म की वृद्धि होती है, **तदा** : तब-तब, **अहम् आत्मानं सृजामि** : मैं अपने आप को प्रकट करता हूँ.■

पंचतंत्र कई दृष्टियों से संसार की सर्वाधिक लोकप्रिय कृतियों में से एक है। इसमें संकलित कहानियों का मूल उत्स लोक-जीवन है। भारतीय कृतियों में पंचतंत्र ऐसी अकेली रचना है, जिसे पूरी तरह ज्ञानकोश कहा जा सकता है। कथा प्रस्तुति की जो शैली इसमें प्रयुक्त है, उसकी एक लंबी परम्परा है। 'वेद', 'ब्राह्मण' आदि ग्रंथों में भी इस फैंटेसी का प्रयोग हुआ है।

सच बोलो पर सच सच नहीं

> मैं मान लेता हूं कि तुम सभी गुणों से भरपूर हो, फिर भी मेरी आंखों से दूर हो जाओ. बेटे, तुम शूरमा हो, विद्वान हो, देखने में सुंदर भी हो. बस तुममें एक ही कमी है कि जिस कुल में तुम पैदा हुए हो उसमें हाथी का शिकार नहीं किया जाता.

किसी नगर में एक कुम्हार रहता था. उसने कुछ चढ़ा रखी थी. उसी हालत में वह दौड़ने लगा और मुंह के बल जमीन पर गिर गया और उसके माथे में एक नुकीला ठीकरा चुभ गया. उठा तो खून से लथपथ. किसी तरह उठकर घर पहुंचा.

उसकी असावधानी से उसका घाव सड़ गया और ठीक होने का नाम ही न ले. बहुत दवा-दारू के बाद कहीं ठीक हुआ तो अपना निशान उसके माथे पर हमेशा के लिए छोड़ गया.

जिस देश में वह रहता था उसमें एक बार बहुत बड़ा अकाल पड़ा. भूख से बेहाल हो कर लोग देश-विदेश भागने लगे. वह भी राजा के कुछ सिपाहियों के साथ हो लिया और एक दूसरे राज्य में जा पहुंचा. भाग्य ने साथ दिया और वहां के राजा के यहां उसे नौकरी मिल गई.

राजा उसके माथे के निशान को देखकर उससे बहुत प्रभावित हुआ. वह मन ही मन सोचने लगा कि यह राजपूत इन सभी सैनिकों में सबसे बहादुर है. इसे यह चोट वीरता के किसी कारनामे में ही लगी होगी. राजा के यहां उसका मान-सम्मान इतना बढ़ गया कि असली राजपूत उसके सामने फीके पड़ गए. उन्हें यह देखकर भीतर ही भीतर जलन तो होती थी, पर यह सोचकर कि राजा की इस पर कृपा है कुछ कहते नहीं बनता था.

एक बार युद्ध की नौबत आ गई. चारों ओर युद्ध की ही तैयारियां होने लगीं. सैनिक भर्ती किए जाने लगे. उनकी बहादुरी की परीक्षा ली जाने लगी. हथियारों को धार दी जाने लगी. सैनिकों के लिए हाथियों पर हौदे और घोड़ों पर जीन कसी जाने लगी. इसी समय राजा उस कुम्हार को एक किनारे ले जाकर पूछ बैठा, 'योद्धा, तुम किस जाति के राजपूत हो? तुम्हारा नाम क्या है? यह चोट तुम्हें किस मोर्चे पर लगी थी?'

कुम्हार चाहता तो झूठ भी बोल सकता था, पर वह ठहरा सत्यवादी. उसका नाम युधिष्ठिर जो ठहरा. बोला, 'महाराज मैं क्षत्रिय नहीं हूं. मैं जाति का कुम्हार हूं. यह चोट भी मुझे लड़ाई के मैदान में नहीं लगी. हमारे घरों के आस-पास टूटे-फूटे बर्तन तो बिखरे ही होते हैं. एक दिन मैंने शराब पी ली और वह कुछ यूं चढ़ गई कि मैं नशे में भागने लगा. इसी में ठोकर खाकर मुंह के बल गिर पड़ा और एक ठीकरे का नुकीला कोना माथे में चुभ गया. उसी के पक जाने से यह निशान पड़ गया.'

उसका यह कहना था कि राजा के ऊपर घड़ों पानी पड़ गया. कहां तो इसे इतना बड़ा शूरमा समझे बैठा था, कहां निकला यह कुम्हार. उसने अपने सैनिकों से कहा, 'इसने मुझे इतने समय तक धोखे में रखा. इसे गर्दन से धक्का देकर यहां से निकाल बाहर करो.'

जिस समय एक सैनिक उसकी गर्दन पर हाथ लगाकर धक्का देते हुए बाहर निकाल रहा था उस समय कुम्हार ने कहा, 'महाराज, लड़ाई के मैदान में मुझे अपना कारनामा तो दिखाने दिया होता. इससे पहले ही मुझे इस तरह निकालकर आप मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं.'

राजा ने कहा 'मैं मान लेता हूं कि तुम सभी गुणों से भरपूर हो, फिर भी मेरी आंखों से दूर हो जाओ. बेटे, तुम शूरमा हो, विद्वान हो, देखने में सुंदर भी हो. बस तुममें एक ही कमी है कि जिस कुल में तुम पैदा हुए हो उसमें हाथी का शिकार नहीं किया जाता.'

यह बात कुम्हार के भेजे में नहीं उतरी तो राजा ने यह कहानी सुनाई.■

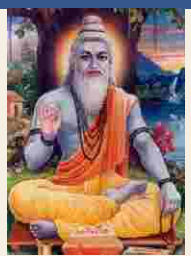

महर्षि वेद व्यास

वैदिककालीन ऋषि वेद व्यास की रचना महाभारत की गणना भारतीय साहित्य-भंडार के सर्वश्रेष्ठ महाग्रंथों में की जाती है। इसमें पांडवों की कथा के साथ अनेक सुन्दर उपकथाएँ हैं तथा बीच-बीच में सूक्तियाँ एवं उपदेशों के उज्जवल रत्न भी जुड़े हुए हैं। महाभारत एक विशाल महासागर है जिसमें अनमोल मोती और रत्न भरे पड़े हैं। रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृति और धार्मिक विचार के मूल स्रोत माने जा सकते हैं।

चौथा दिन

लड़ाई में हर दिन एक ही जैसी घटनाएं हुआ करती हैं. मार-काट व हार-जीत के सिवाय उसमें होता भी क्या है कि जिससे कथा मनोरंजक बने? परंतु महाभारत के आख्यान की सर्व-प्रथम घटना ही युद्ध है. उसे अगर ध्यान से न पढ़ा जाये तो कथा के भावों और भावोद्वेगों का सही परिचय प्राप्त नहीं हो सकता.

पौ फटी. भीष्म ने कौरवों की सेना का फिर से व्यूह रचा. द्रोण, दुर्योधन आदि वीर उन्हें घेरकर खड़े हो गये. वह इस समय ऐसे मालूम होते थे मानो देवताओं से घिरे देवराज इन्द्र ही वज्र लिये खड़े हों. अपनी व्यूह-रचना से संतुष्ट हो भीष्म ने सेना को आगे बढ़ने की आज्ञा दी. उधर हनुमान की ध्वजावाले रथ पर से अर्जुन ने भीष्म की हलचलों का निरीक्षण कर लिया और वह भी युद्ध के लिये तैयार हो गया. लड़ाई शुरू हो गई.

अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, शल्य, चित्रसेन, शल-पुत्र आदि पांचों वीरों ने बालक अभिमन्यु को एक साथ घेर लिया और भीषण वार करने लगे. अर्जुन का वीर बालक जरा भी विचलित न हुआ और पांचों आक्रमणकारियों का दृढ़ता के साथ मुकाबला करने लगा मानो एक सिंह-शावक हाथियों के समूह का मुकाबला करता हो. अर्जुन ने जब यह देखा तो उसे बड़ा क्रोध आया और तुरंत अभिमन्यु के पास पहुंच गया. अर्जुन के आने से युद्ध में और गर्मी आ गई. इतने में धृष्टद्युम्न भी बड़ी सेना लेकर उधर आ पहुंचा.

शल का पुत्र मारा गया. यह खबर पाकर शल और शल्य दोनों उस जगह आ पहुंचे और धृष्टद्युम्न पर बाणों की वर्षा करने लगे. शल्य ने एक तीखा बाण चलाकर धृष्टद्युम्न का धनुष काट डाला. यह देख अभिमन्यु से न रहा गया. उसने शल्य पर तेज बाणों की बौछार कर दी. अभिमन्यु का क्रोध देखकर कौरव-वीर कांप उठे. शल्य पर भारी संकट आया जानकर दुर्योधन और उसके भाई उसकी मदद पर आ गये और शल्य को चारों ओर से घेर लिया. इसी बीच भीमसेन भी उधर आ पहुंचा और जमकर युद्ध करने लगा. दुःशासन आदि ने जब यह देखा तो एक बारगी कांप उठे. यह देख दुर्योधन को बड़ा क्रोध आया. उसने क्रोध में भरकर हाथियों की भारी सेना ले भीमसेन पर हमला कर दिया. चिंघाड़ते हुए हमला करने वाले हाथियों का मुकाबला करने के लिये भीमसेन रथ

"शल का पुत्र मारा गया. यह खबर पाकर शल और शल्य दोनों उस जगह आ पहुंचे और धृष्टद्युम्न पर बाणों की वर्षा करने लगे. शल्य ने एक तीखा बाण चलाकर धृष्टद्युम्न का धनुष काट डाला."

पर से कूद पड़ा और लोहे की एक भारी गदा लेकर उन पर पिल पड़ा. भीम की मार खाकर हाथी भयभीत हो उठे और आपस में ही लड़ने लगे. वह दृश्य बड़ा भीषण व साथ-साथ दयनीय भी था. कौरवों की हाथी-सेना का यह हाल देखकर पांडव-सेना के वीर उन हाथियों पर बाणों की सतत बौछार करने लगे जिससे वे और भी भयभीत हो गये.

भीमसेन उन मस्त हाथियों के बीच में घुस गया और उनको बुरी तरह से मार गिराने लगा. उस समय ऐसा मालूम होता था, मानो देवराज इन्द्र पर्वतों के पंख काट रहे हों. असंख्य हाथी मारे गये और पहाड़ों की भांति रण-भूमि में गिर पड़े. बचे-खुचे हाथी घबराहट के मारे इधर-उधर भागते हुए कौरवों की सेना का ही नाश करने लगे.

यह सब देखकर दुर्योधन से न रहा गया. उसने आज्ञा दे दी कि सारी कौरव-सेना एकत्र होकर अकेले भीम पर आक्रमण कर दे; पर कौरव-सेना के इस आक्रमण से भीमसेन जरा भी विचलित न हुआ और सुमेरु पर्वत के समान अचल डटा रहा.

इसी बीच पांडव-सेना के और वीर भीम की सहायता को आ पहुंचे

दुर्योधन ने भीम पर जो बाण चलाये थे, उनमें से कई भीमसेन की छाती पर लग गये थे. इससे भीम चिढ़ गया. वह फिर से रथारूढ़ हो गया और सारथी से बोला- 'विशोक!

देखो तो धृतराष्ट्र के लड़के मेरे सामने युद्ध-क्षेत्र में आ खड़े हुए हैं. मैं बड़ा ही खुश हूं. मेरे इच्छारूपी पेड़ पर मानो आज ही फल निकल रहे हैं और मेरे हाथ आ गये हैं. तुम घोड़ों की रास को जरा संभालकर पकड़ लो और रथ को सतर्कता से हांकों. मैं आज ही इन सबको यमराज के दरबार में भेजे देता हूं.'

यह कहते-कहते भीमसेन ने धनुष तानकर दुर्योधन पर कई बाण एक साथ चला दिये. बाणों का प्रहार ऐसा भीषण था कि दुर्योधन के अगर कवच न होता तो उसके प्राण ही निकल गये होते. कवच के कारण वह बच गया. इस हमले में भीमसेन ने दुर्योधन के आठ भाई मार डाले.

दुर्योधन ने भी क्रोध में आकर कई तीखे बाण भीमसेन पर चलाये. एक बाण से भीमसेन के धनुष के टुकड़े कर दिये. इस पर भीमसेन ने दूसरा धनुष ले लिया और तलवार की-सी तेज धारवाला बाण चलाकर दुर्योधन का धनुष काट डाला. दुर्योधन ने भी दूसरा धनुष ले लिया और निशाना साध कर भीमसेन की छाती पर एक भीषण अस्त्र चलाया. चोट खाकर भीम मूर्छित-सा होकर रथ पर बैठ गया. यह देख अभिमन्यु आदि वीरों ने दुर्योधन पर प्रखर अस्त्रों की वर्षा कर दी. अपने पिता का यह हाल देखकर घटोत्कच के क्रोध का ठिकाना न रहा. वह आपे से बाहर हो गया और उसने भयानक युद्ध कर दिया. घटोत्कच के भीषण आक्रमण के आगे कौरव-सेना टिक न सकी.

सेना को विह्वल होती देखकर भीष्म पितामह द्रोण से बोले- 'द्विजवर! इस राक्षस के आगे हम नहीं ठहर सकेंगे. एक तो हमारे सैनिक थके हुए हैं, दूसरे शाम भी हो चली है. अंधेरा हो जाने पर तो राक्षस की शक्ति और भी बढ़ेगी. इस कारण आज का युद्ध अभी बंद कर दें. कल फिर देखा जायेगा.' यह कहकर भीष्म ने युद्ध बंद कर दिया और सेना लौटा दी.

"दुर्योधन ने भी क्रोध में आकर कई तीखे बाण भीमसेन पर चलाये. एक बाण से भीमसेन के धनुष के टुकड़े कर दिये. इस पर भीमसेन ने दूसरा धनुष ले लिया और तलवार की-सी तेज धारवाला बाण चलाकर दुर्योधन का धनुष काट डाला."

उस दिन की लड़ाई में दुर्योधन के कितने ही भाई मारे गये. चिंताग्रस्त दुर्योधन अपने शिविर में जाकर व्यथित हृदय बैठ गया. उसकी आंखें भर आईं.

हस्तिनापुर में संजय महाभारत-युद्ध की घटनाओं का वर्णन धृतराष्ट्र को सुना रहा था. अपने पुत्रों की मृत्यु का हाल सुनकर धृतराष्ट्र आर्त्त स्वर में बोले- 'संजय! तुम तो मेरे ही बंधु-मित्रों एवं पुत्रों के मारे जाने और दुःख उठाने की बात सुनाते जा रहे हो! क्या इसका मतलब यह है कि मेरे पुत्र और उनके साथी ही हार रहे हैं? संजय, सचमुच मुझे बहुत शोक होता है. कौन-सी ऐसी बात है, जिससे मेरे पुत्र जीतने की आशा करते हैं यह मेरे लिये असह्य हो रहा है. ऐसा मालूम होता है, मानो प्रारब्ध का लिखा कोई मेंटा नहीं सकता.'

संजय ने उत्तर दिया- 'राजन्! यह जो कुछ अन्याय हो रहा है, वह सब आपके ही कर्म का परिणाम है. अब घबराने से क्या हो सकता है? अस्थिर न होइए. दृढ़ता के साथ सारी घटनाओं का हाल सुनते जाइए.'

'विदुर की सब बातें अब सच साबित हो रही हैं.' कहकर धृतराष्ट्र ने गहरी सांस ली और अपने बिस्तर पर पड़ गये.

'संजय! जैसे कोई तैरकर समुद्र को पार नहीं कर सकता वैसे ही इस असीम दुख को मैं कभी पार नहीं कर सकूंगा.' धृतराष्ट्र ने रुद्ध कंठ से कहा.

कुरुक्षेत्र के मैदान का आंखों देखा हाल संजय धृतराष्ट्र को सुनाता जाता था. वहां का बयान सुनते-सुनते धृतराष्ट्र व्यथित हो जाते और वह दुख उनकी सहन-शक्ति से भारी हो जाता तो वह कुछ कह-सुनकर अपना शोक-भार हलका कर लेते.

'मेरे सारे पुत्र भीमसेन के ही हाथों मार डाले जाने वाले हैं! हमारे पक्ष में कौन-सा ऐसा शूरवीर हैं, जो मेरे पुत्रों की रक्षा कर सके. मेरे ध्यान में तो कोई ऐसा वीर हमारी तरफ दीखता नहीं. युद्ध में हारकर हमारी सेना मैदान छोड़कर भागती है तो भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा आदि वीर खड़े-खड़े क्या देखा ही करते हैं? सेना को बचाने का वे कोई प्रयत्न नहीं करते? कौन-सी अशुभ घड़ी में मेरे लड़कों की रक्षा करने का उन्होंने निश्चय किया था? अगर यही हालत रही तो मेरा एक भी पुत्र जीता नहीं बचता दीखता. हा दैव! तूने मेरे भाग्य में क्या लिख रखा है?' यह कहकर वृद्ध धृतराष्ट्र रोने लगे.

संजय बोले- 'राजन्! शांत होइए. पांडव धर्म पर स्थिर हैं, इसलिये युद्ध में भी विजय उन्हीं की होनी है. माना कि आपके भी पुत्र बड़े वीर हैं, किंतु उनके मन में कुविचार ही उठते हैं. यही कारण है कि उनकी अवनति ही होती जा रही है. अब तक पांडवों की उन्होंने बुराई की. अब वे अपने ही किये का फल पा रहे हैं. पांडव और कुछ नहीं करते, केवल क्षत्रियोचित ढंग से न्यायपूर्वक युद्ध कर रहे हैं. न्याय के मार्ग से विचलित न

होने के कारण उनका बल नष्ट नहीं हुआ, उल्टे वह बढ़ रहा है. आपको विदुर ने, द्रोण ने, भीष्म और मैंने कितना समझाया! फिर भी आपने किसी की न सुनी. अपने हितौषियों की बात न मानी. अपनी ही राह चले. जैसे कोई रोगी मूर्खतावश दवा न खाने की हठ करे, वैसे ही आप अपने मूर्ख पुत्र की राय मानते रहे और वह बात नहीं मानी जिससे कुल का हित हो सकता था. अब आप पछता रहे हैं, लेकिन इससे क्या फायदा हो सकता है? और सुनिये, आपके पुत्र दुर्योधन ने चौथी रात को भीष्म से यही प्रश्न किया जो आपने अभी मुझसे किया. भीष्म ने उसका क्या उत्तर दिया, यह भी आपको अभी सुनाता हूं.'

इस भूमिका के साथ संजय ने आगे कहना शुरू किया.

चौथे दिन का युद्ध बंद हुआ. रात हो चली. दुर्योधन अकेले पितामह भीष्म के शिविर में गया और बड़ी नम्रता के साथ पूछा- 'पितामह, यह तो सारा संसार जानता है कि आप, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, कृतवर्मा, भूरिश्रवा, विकर्ण, भगदत्त आदि साहसी वीर मृत्यु से जरा भी नहीं डरते. इसमें कोई संदेह नहीं है कि आप लोगों की शक्ति और पराक्रम के सामने पांडवों की सेना कुछ नहीं है. आपमें से एक-एक के विरुद्ध पांचों पांडव इकट्ठे भी जुट जायें, फिर भी उनकी जीत नहीं हो सकेगी. इतना सब कुछ होते हुए भी, क्या कारण है कि कुंती के पुत्र हमें रोज युद्ध में हराते जाते हैं? अवश्य इसमें कोई रहस्य मालूम होता है. मुझे यह समझाइये.'

भीष्म ने शांत से उत्तर दिया- 'बेटा दुर्योधन! मेरी बात सुनो. मैंने कितने ही प्रकार से तुम्हें समझाया. ऐसी युक्तियां बताईं जिनसे तुम्हारा हित हो सकता था, परंतु तुमने एक न सुनी. बड़े-बूढ़ों का कहा न माना. पर अब भी चेत जाओ. पांडवों से संधि कर लो, जिसमें तुम्हारी भी कुशल हो और संसार की भी. आखिर दोनों एक ही कुल के हो- भाई-भाई हो. राज्य को आपस में बांटकर दोनों बंधुगण सुखपूर्वक भोग सकते हो. इससे पहले भी मैंने तुम्हें यही सलाह दी, पर तुमने नहीं मानी. उल्टे पांडवों का अपमान किया. अब तुम यह अपने ही किये का फल पा रहे हो. भगवान कृष्ण जिनके रक्षक हैं, उन पांडवों की विजय अवश्य होगी, इसमें संदेह नहीं. अब भी मैं तुमको सावधान किये देता हूं कि पांडवों से संधि कर लेना ठीक होगा. इससे एक तो तुम्हें शक्तिवान भाई प्राप्त होंगे. दूसरे तुम राज्य का भी सुख भोग सकते हो. स्मरण रहे कि श्रीकृष्ण और अर्जुन नर-नारायण के अवतार हैं. उनकी अवहेलना करोगे तो तुम्हारा सर्वनाश निश्चित है.'

दुर्योधन अपने शिविर में चला गया. पलंग पर लेटा हुआ बड़ी देर तक विचारों में डूबा रहा. इसी प्रकार सोचते-सोचते उसे नींद आई. ■

सीताराम गुप्ता

कार्तिक शुक्ल दशमी, संवत् २०११ (१९५४ ई.) को दिल्ली के एक गाँव ठाकरान में जन्म. उर्दू, अरबी, फारसी का अध्ययन एवं रूसी भाषा और उनके साहित्य में रुचि. प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में साहित्य तथा भाषा विषयक लेख, व्यंग्य, कथा-साहित्य तथा कविताएँ नियमित रूप से प्रकाशित.

सम्पर्क : ए.डी. १०६-सी, पीतमपुरा, दिल्ली. ईमेल srgupta54@yahoo.co.in

आधुनिक बोधकथा

न्याय

एक हंस अपनी हंसिनी के साथ कहीं जा रहा था कि रास्ते में शाम हो गई. उन्होंने वहीं रात बिताकर अगले दिन आगे जाने का कार्यक्रम बनाया और एक अच्छा-सा पेड़ देखकर वहीं रुक गए. उस पेड़ पर और उसके आसपास के पेड़ों पर बहुत सारे कौवे रहते थे. कौओं ने हंस और हंसिनी की ख़ूब आवभगत की. सुबह होने पर जब हंस अपनी हंसिनी के साथ जाने लगा तो एक कौए ने कहा कि इस हंसिनी को कहाँ ले जा रहे हो? यह तो हमेशा से इसी पेड़ पर हमारे साथ रहती आई है. हम अपनी हंसिनी को ऐसे थोड़े ही तुम्हारे साथ जाने देंगे? हंस ने बहुत अनुनय-विनय की लेकिन कौओं ने उसकी एक न सुनी. दुखी होकर हंस ने पंचायत बुलाने की धमकी दी. कौओं ने कहा कि ठीक है पंचायत जो फैसला करेगी हमें मान्य होगा और ख़ुश होकर चिल्लाने लगे. आसपास के पेड़ों के सारे कौए इकट्ठे हो गए. काँव-काँव की कर्कश ध्वनि से जंगल गूंज उठा.

न्यायाधीश कौओं की बैंच ने एकमत होकर फैसला दिया कि ये हंसिनी तो हमेशा से यहाँ रहती आई है अतः हंस का इस पर कोई अधिकार नहीं है और वह इसे साथ नहीं ले जा सकता. हंस ने सिर झुकाकर कहा, 'मुझे आपका फैसला मंज़ूर है. पंचों के मुख से परमेश्वर बोलता है. आपने बहुत अच्छा फैसला किया है लेकिन एक बात बताओ कि आप लोगों के बाद ऐसे बढ़िया फैसला कौन करेगा?' एक न्यायाधीश कौए ने पंख फुलाकर घमंड से अकड़ते हुए कहा कि हमारे बाद हमारी औलाद और हमारे वंश के दूसरे सदस्य ऐसा न्याय करेंगे.

'ऐसा उम्दा न्याय करने के बाद भी औलाद और वंशवृद्धि की उम्मीद रखते हो?' इतना कहकर, कौए कुछ कहते इससे पहले ही, हंस दुखी मन से कौओं द्वारा निर्मित मानसिक यंत्रणा रूपी जेल की ओर उड़ चला.

हंस के वियोग में हंसिनी बेचारी ने अपने प्राण त्याग दिये. कौओं को भी हंसिनी तो कहां मिलनी थी कालांतर में उस जंगल से ही कौओं का नामो-निशान मिट गया. जिस समाज में ऐसी न्याय व्यवस्था होगी उस समाज का मिट जाना अवश्यंभावी है. ■

गंगानन्द झा

बैद्यनाथ-देवघर (झारखण्ड) में जन्म. सीवान (बिहार) के डी.ए.वी स्नातकोत्तर कॉलेज में वनस्पति-शास्त्र की अध्यापन से सेवा-निवृत्त. चार्ल्स डार्विन के क्रम-विकासवाद, जवाहरलाल नेहरू के scientific temper तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर के जीवन-दर्शन के समन्वय के आलोक में जीवन-पथ के प्रति अपने कौतूहल बरकरार है. वर्तमान में चण्डीगढ़ में अपने चिकित्सक पुत्र के साथ निवास.

सम्पर्क : ganganand.jha@gmail.com

अनुवाद

नीरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती

जन्म १९ अक्टूबर, १९२४. लोकप्रिय आधुनिक बांग्ला कवि हैं. मुख्यतः कवि होने के बाद भी इन्होंने अपने पाठकों को चश्मार आड़ाले, ऐकटी हत्यार अन्तराले, श्याम निवास रहस्य इत्यादि जैसी रहस्य-कथाओं से बाँधे रखा है। सन १९७४ ई. में इनके कविता-संग्रह 'उलंग राजा' (नंगा राजा) के लिए साहित्य ऐकेडेमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। 'नील निर्जन' और 'अंधकार बारांदा' इनके चर्चित कविता संग्रहों में हैं।

मूल बांग्ला से हिन्दी में अनुवाद

तुम देख लेना

एक-एक कर बना लूँगा, तुम देख लेना
घर-दरवाजा, खेत-खलिहान
आँगन में लौकी का मचान, खिड़की के पास
जूही की लतराई हुई झाड़—
एक-एक कर सब बनाऊँगा, तुम
देख लेना।
दक्षिण की ओर तालाब रहने से अच्छा रहता है,
तुमने कहा था।
अवश्य रहेगा।
तालाब में हंसों का नहाना देखना चाहती हो,
वह कौन-सी बड़ी बात है,
सफेद और बादामी हंस छोड़ दूँगा।
एक बार में ही शायद न हो, पर
एक-एक कर होगा।
प्यार रहने से सब होता है
देख लेना, सब होगा।
जो कुछ भी बनाया जा सकता है
मैं दो हाथों से
क्रमशः बना लूँगा, तुम देख लेना।

हठात् एक दिन

वहाँ गया होता तो कोई ग़लत बात नहीं होती
और कुछ नहीं, बस देख लिया जाता
कि हमारे इसी शहर के पास से होकर
बहती जाती
दुबली-पतली सी नदी
पहाड़ की किस जगह से अपना एक जीवन खत्म कर किस तरह
नीचे की घाटी में आँख-कान बन्द कर कूद पड़ती है और
फिर तभी एकाएक अपनी
गलती सुधारकर
हठात् एक नदी बन जाती है।
लेकिन नींद टूटने में देर हुई
इसलिए उस पहाड़ पर मेरा जाना नहीं हुआ।

इधर हमारी आँख के सामने
खाली झोले से कबूतर निकालने के मैजिक की तरह
छू-मन्तर से उभड़ आए मकान
की छत की रेलिंग पकड़ी हुई
वह लड़की जो अपने
केश बिखेरकर
भरी साञ्झ अकेली चुपचाप खड़ी रहती है।
उसका भी इरादा
मैं नहीं समझ पाता।

मैं अपनी खिड़की से उसे देखता हूँ और
देखते-देखते सोचा करता हूँ
क्या एक दिन वह लड़की भी
हठात् एक दिन
बारह तल्ले की रेलिंग फाँदकर
नीचे की सड़क पर कूद जाएगी?
और गिरती जाती हुई बीच में ही भूल सुधारकर
मेरी आँखों के सामने ही
उड़ जाएगी दोएल या मैना बनकर?

सोचते ही सिहर जाता हूँ
झरना कैसे नदी बन जाता है,
यह देखने हठात् एक दिन
भोर-भोर को नींद से जगकर उसी
पहाड़ के नीचे अवश्य जाऊँगा।
लेकिन आदमी ही काफी ठीक है, वह
छत से कूदकर पक्षी हो जाता है या नहीं
यह देखने का, आप विश्वास करें
कोई भी इच्छा नहीं है मेरी।

■

बीनू भटनागर

४ सितम्बर १९४७ को बुलन्दशहर में जन्म. लखनऊ विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान में एम.ए. की उपाधि. हिन्दी साहित्य में हमेशा से रुचि रही, लेकिन रचनात्मक लेखन देर से आरंभ किया. नामी पत्र-पत्रिकाओं में कवितायें, आलेख आदि प्रकाशित.

सम्पर्क : ए-१०४, अभियन्त अपार्टमेन्ट, वसुन्धरा एनक्लेव, दिल्ली-११००९६ ईमेल : binu.bhatnagar@gmail.com

कविता

व्यथा

सूर्य की प्रथम आरुषि ने
क्षुब्ध कलिकाओं को चूमा
ओस कण तब बिखर कर
व्यथा उनकी व्यक्त कर दी।

अब कहाँ हैं वो बहारें
नीरव है और शून्य है
शून्य में ही सार है
शून्य में विस्तार है।

फूल भी मुरझा गये हैं
पत्ते भी कुम्हला गये हैं
सूखी है ये झील सारी
तड़पती है मछलियाँ भी।

तेरी आँख के ये मोती
जो गिरे हैं, कब रुकेंगे
पोंछ दे आँसुओं को
मुस्कुरा दे, फूल खिलेंगे।

■

अवरोध

अवरोध तो आयें जायेंगे
इनसे शक्ति ग्रहण कर साथी
अपने पथ पर बढ़ते जाओ
छोटे-छोटे लक्ष्य बनाओ
उनको पार करो, बढ़ जाओ।

क्षितिज नज़र का धोखा है
जितना उसकी ओर बढ़ो
वो और दूर नज़र आता
मंजिल पर पहुँचो तो कोई
नई मंज़िल दिखा जाता।

पहली मंज़िल पर पहुँचो फिर
नया रास्ता चुनकर बढ़ लो
थोड़ा सम्हलो थोड़ा बढ़ लो
एक रास्ता बन्द हो जाये तो
राह बदल कर आगे बढ़ लो
अपने मन को विजयी कर लो।

जो मिल जाये वो अपना है
जो नहीं मिला वो सपना है।

■

अशोक गुप्ता

२९ जनवरी १९४७ को देहरादून में जन्म. इंजीनियरिंग एवं प्रबंधन की उपाधियाँ हासिल की. हिन्दी साहित्य में गहरी रुचि. प्रकाशित कृतियाँ - कहानी संग्रह : इसलिए, तुम घना साया, तिनकों का पुल. उपन्यास : उत्सव अभी शेष है. हिंदी अकादमी दिल्ली द्वारा कृति सम्मान से सम्मानित. सम्प्रति : स्वतंत्र लेखन

संपर्क : ३०५ हिमालय टॉवर, अहिंसा खंड-२, इन्द्रापुरम गाज़ियाबाद-२०१०१० ई-मेल : ashok267@gmail.com

संकल्प

फोटो : अमरेश नंदन

मैं रचूंगा
अपने लिए
अपना सम्पूर्ण निजी संसार
मैं खड़ा हूँ
इस धरती पर
वैसा ही मौलिक
जैसा
मेरी माँ ने
मुझे तप स्वरूप जन्मा था

मेरे पिता ने दी है
मुझे
विराट विपुल ऊर्जा
दी है अपार
दृष्टि
जो मैं देख सकूँ
खुद-ब-खुद
अपना निजी
क्षितिज

मुझे सूझ रहा है
अपना अनंत साफ़ साफ़
मैं सुन रहा हूँ
उसका आवाहन
उसकी प्रतीक्षा व्यग्र है
वह देगा मुझे अपने हाथों से
मेरा प्राप्य
मेरा देय

परिधान, मुकुट, खड्ग
और सिंहासन
वह सब मिलेगा मुझे
जो मैं खुद सृजूँगा

मेरी मां ने दिए हैं मुझे
असंख्य जीवन वर्ष
पिता ने थमाई है
एक अदृश्य मशाल
उसमें ऊष्मा है, प्रकाश है
और यश का विस्तार है

मैं अदम्य बांटूंगा यह सब
सम्पूर्ण संसार को
अपने पिता की तरह
अनादि काल तक
ठीक इसी पल से

मेरे सिर पर
पितामह का वरद हस्त है.
■

नागेन्द्र दत्त वर्मा

गोरखपुर में जन्म. इलाहाबाद विश्वविद्यालय से इतिहास में एम.ए., साहित्यिक अभिरुचि इन्हें अपने पिता से विरासत में मिली जो साठ के दशक में ब्रिटिशगायना एवं वेस्टइंडीज़ में राजदूत रहे. बाद में नेहरू जी द्वारा राज्यसभा के सदस्य मनोनीत हुए. कविताएँ और आलेख हिन्दी, अंग्रेज़ी की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित. काव्य-कृति 'देवभूमि' प्रकाशित. सम्प्रति - पर्यटन-विभाग के संयुक्त निदेशक के पद से सेवानिवृत्त होकर वर्तमान में लखनऊ में निवास.

सम्पर्क : २२/४६७, इन्दिरानगर, लखनऊ, उ.प्र. २२६०१६

कविता

चिर-प्रतीक्षा

चिर-प्रतीक्षा लिये उर-विरह को सँजो
मानिनी भामिनी द्वार पर मौन थी
नित नई आस ले प्रिय मिलन को सुमुखि
रात गिनती हुई कामिनी मौन थी

नयन कह रहे थे हृदय की व्यथा
बह रहे थे सदा किन्तु निर्झर सदृश
इक कसक को हृदय में दबाये हुए
प्यार के उन क्षणों को सँजोये हुए

लाज, सम्मान, दुःख-भार से वह दबी
प्रीत पिय की लिये प्रेयसी मौन थी

दिन ढला, अब निशा की घड़ी आ गई
फिर मधुर प्यार की वह घड़ी आ गई
किन्तु सूना है घर और सूना है मन
और सूना है मधुमास का आगमन

निज विरह-ताप में वह झुलसती रही
चाँद ढलता रहा चाँदनी मौन थी

युग गये किन्तु फिर भी न आये सजन
आ गये मेघ काले सजल औ सघन
मेघ पावस के ज्यों-ज्यों परसने लगे
नैन प्रिय के लिये त्यों तरसने लगे

होंठ सूखे मधुर और हुआ कृश वदन
सुन्दरी जग रही, यामिनी मौन थी

प्रेम-पाती लिखी किन्तु लिख न सकी
गात निश्चल हुआ और कर ना उठे
जब किसी कोकिला-कंठ ने कूक कर
हूक दिल में उठाई, नयन भर उठे

उर की गहराइयों में उठी इक तड़प
वह तड़पती रही पर तड़प मौन थी

अमिट प्यार का दिल में दीपक सजा
पवन के झकोरों से भेजे निमंत्रण
गगन-मेघ के हाथ भेजे पिया को
बहुत बार अनगिन सुमुखि ने नयन-कण

नयन-जल ढरकते रहे रात भर
वह सिसकती रही पर सिसक मौन थी

चिर प्रतीक्षा लिये उर-विरह को सँजो
मानिनी भामिनी द्वार पर मौन थी.

■

श्रीनिवास श्रीकान्त

१२ नवम्बर, १९३७ को जन्म. पंजाब विश्वविद्यालय से स्नातक. प्रकाशित कृतियां : कविता संग्रह - नियति, इतिहास और जरायु, बात करती है हवा, घर एक यात्रा है, हर तरफ समन्दर है. पहाड़ के ३९ कथाकारों की कहानियों का संकलन 'कथा में पहाड़' प्रकाशित. 'गल्प के रंग' आलोचना पुस्तक. किन्नौरी लोक कथा पर आधारित संगीत नृत्य नाटक-हिनाडंडुव और लाटी शेरजंग और महा समर की गौरव गाथा (१८५७ से १९४७ तक का स्वतन्त्रता संग्राम) नाटकों का लेखन व दूरदर्शन से प्रसारण। जर्मन, ग्रीक नाटकों का हिन्दी में अनुवाद. रूपान्बरा द्वारा दिनकर सम्मान से सम्मानित.

सम्पर्क : ९/ए, पूजा कोपरेटिव सोसाइटी, संदल हिल, कामना नगर (चक्कर), शिमला-१७१००५ फोन - ०१७७-२६३३२७२

अनात्म

वह घूम रहा अकेला अनात्म
रोज़-ब-राज देखते हैं हम उसे
महानगर, मैट्रो, सर्पाकार सड़कों पर
ट्रैफिक के बीच
वह नज़र आता है चिन्तातुर
बैठा अपनी गाड़ी में
अपनी भावी योजनाओं
संकल्पों पर सोचता

वह है आज का आदमी
करोड़ों में वह है एक निरन्तर
आगे बढ़ती हुई लकीर - एक एक कर
इतनी सारी लकीरें
मगर बिन्दु-सी एकाकी

शोर में भी बुन रहा वह अपने लिए
काल के समानान्तर एक सन्नाटा
अपने कैवल्य में संघर्षरत
जीवन की भूलभूलैयों में खोया खोया
भटक रहा - जुटा रहा अपने लिए
भौतिक सुख का सुविचारित साज़-ओ-सामान
वह है आधुनिक जनसमूह में
पहचाना जा सकने वाला
एक औसत आदमी

इच्छा की गाड़ी में अग्रसर
अन्तरात्मा उसकी हो गयी है भूमिगत
अनमोल अतीत कहीं छूट गया पीछे
तहज़ीब, अपनापन, मानापमान
है अब उसके लिए
गुज़रे हुए कल की बात
वह कर रहा महज जमा-खर्च
तन, मन और धन ही है
अब उसका वतन

उसकी आहट पर घर के ग्लास टैंक में
हरकत करने लगती हैं रंगबिरंगी मछलियाँ
डुबकियाँ लेतीं, सहज उछलतीं
वे हैं सुनहरी बलाएँ
जल के छल में

भटकता है
नीलाम-मण्डियों में उसका अनात्म
आज़माने अपना भाग्य
जीवन अब उसके लिए सट्टा है
जुए में अब उसने खुद अपने को भी
रख दिया है रहन
वह खेलता है बार-बार
वही एक दाव

वह है विदेह - वह है अनात्म
आत्मा तो कुछ नहीं करती
मृत्यु के साथ वह ले लेगी
संसार से विदा.
■

शैफाली
वेबदुनिया पोर्टल के लिए 'जीवन के रंगमंच' के नाम से कॉलम लिखा. फिलहाल ऑनलाइन ट्रांसलेशन का काम करती हैं.
सम्पर्क : २२, संगम कॉलोनी, बलदेव बाग़, जबलपुर (म.प्र.) ईमेल : naayika@yahoo.in

कविता

मुक्ति

मैं मुक्ति की आकांक्षा की परिणति हूँ
बूँद भर आँखों में
सागर को उड़ेल देने का स्वप्न
और गज भर आँचल में
वृहद समाज के लांछनों को
ढोने पर भी
उसके छूट जाने का
या फट जाने का संदेह
मुझे विचलित नहीं करता
न ही रोकता है
मेरे पैरों को
जो शांत श्वासों की थाप पर
नृत्य करते हैं बेसुध हो कर

मैं मुक्ति की आकांक्षा की परिणति हूँ
दो मुट्ठियों में
धरती और आकाश को भींचकर
और नाज़ुक से कंधों पर
संस्कारों में लपेटी
परतंत्रता को ढोने पर भी
थक जाने का या टूट जाने का
संदेह मुझे विचलित नहीं करता
न ही रोकता है मेरी बाहों को
जो प्रकृति को समेट लेती हैं
जब पैर थिरकते हैं
श्वासों की थाप पर

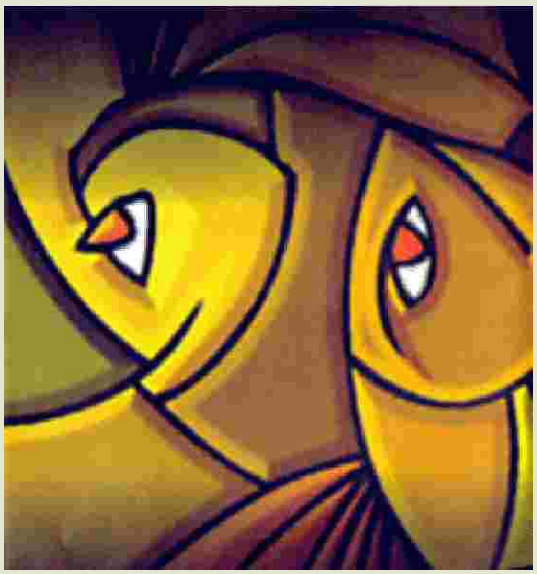

मैं मुक्ति की आकांक्षा की परिणति हूँ
जीवन और मृत्यु के
बिम्बों पर
आनंद के सूक्ष्म कणों को टिकाकर
और आत्मा की मिट्टी पर
देह के उग आने पर भी
पलीत नहीं होती
न ही पतित होती है
जहां सारे संदेहों को
द्वार मिलता है समाधान का
जहां से सारे द्वार खुलते हैं
मुक्ति के.
■

प्रेमा झा
२१ नवम्बर १९८४ को जन्म. अनेक पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ प्रकाशित. 'हरे पत्ते पर बैठी चिड़ियाँ' कविता संग्रह प्रकाशित.
सम्प्रति - HR Manager cum Assistant Editor, SRK NewsLeaks Media Pvt.Ltd., New Delhi
सम्पर्क : फ्रेंड्स प्रॉपरटीज, बी-९७ (टॉप फ्लोर), अमृतपुरी, ईस्ट ऑफ कैलाश (अपोजिट इस्कॉन), नई दिल्ली-६५
ईमेल : prema23284@gmail.com

चूल्हा

बैठती हूँ तीन रोटियाँ बनाने के वास्ते
मेरी खिड़की सिंकती है
दीवार के तवे पर।

चूल्हे की भी है कोई तन्हाई
पता चला मुझे आज
मैं अँगीठी जनती हुई
अँधेरे कमरे में मौन
एक अकेला चूल्हा
एक निवाले के लिए
मेरी छत इतिहास लिख रही
मेरी पीड़ा का।

मैं निर्वात सह रही
अकेली रात जल रही।
■

धूप में

छत पर धूप में
नीम-दुपहरिया
तीन औरतें क्या बातें करती होंगी?

सच पूछिए यहाँ -
बढ़ती महँगाई, बूढ़ी हो गयी त्वचा
या फिर दिन-रात मूसल में पिसती
इस जिस्म का कोई जिक्र
नहीं होता।

वो छेड़ती हैं एक राग
सूरज के लिए
अपने दोनों हाथों को बाँधते हुए
सूखे होंठो पर
कामना होती है
काश!
सूरज और गर्म होता।
■

नीरज गोस्वामी

अगस्त १९५० को जम्मू में जन्म. अंतरजाल की लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में ग़ज़लें प्रकाशित. पेशे से इंजीनियर. अनेक विदेश यात्राएं कर चुके हैं. सम्प्रति - भूषण स्टील मुंबई में वाइस प्रेसिडेंट के पद पर कार्यरत.

सम्पर्क : neeraj1950@gmail.com

शायरी की बात

ऐसी मिट्टी है कि बुनियाद ठहरती ही नहीं

ओम सपरा जी से मैं व्यक्तिगत तौर पर तो कभी नहीं मिला लेकिन एक आध बार फोन और ई-मेल के माध्यम से परिचय है. वो मेरी रचनाओं को पढ़ कर हमेशा मेरा उत्साहवर्द्धन करते रहे हैं. 'सपरा जी' जो दिल्ली में रहते हैं और बहुत बड़े साहित्य प्रेमी हैं, अनुभव का लाभ तो मुझे मिलना ही था सो मिल गया. उन्हीं की मेहरबानी से मुझे 'आवाज़ का रिश्ता' किताब की जानकारी मिली जिसे जनाब 'कुलदीप सलिल' साहेब ने लिखा है. पुस्तक के अशआर पसंद आने पर पाठक 'ओम जी' का शुक्रिया करना ना भूलें.

खाक़ हो जाये न तन, मिटटी न हो मन जब तक/चीज़ ऐसी है ये हसरत कि निकलती ही नहीं.

ज़िन्दगी धूप भी है, छाँव भी है तो फिर क्यूँ/बदनसीबी ये सरों से कभी टलती ही नहीं.

मकां कोई यहाँ तामीर करे तो कैसे/ऐसी मिटटी है कि बुनियाद ठहरती ही नहीं.

इस किताब की ग़ज़लें इतनी सरल हैं कि पढ़ने वाला कब इन्हें गुनगुनाने लगता है पता ही नहीं चलता. बेहद सादा जबान इसकी सबसे बड़ी खासियत है. ये कमाल कोई अनुभवी ही कर सकता है और सलिल साहेब के पास लगता है अनुभव का खजाना है. इसीलिए उनकी कही बात पढ़ने वालों को अपनी ही लगती है.

सलिल साहेब ने एम.ए. अंग्रेजी और अर्थशास्त्र दिल्ली विश्व विद्यालय से किया था उसके बाद 'हंस राज कालेज' दिल्ली के अंग्रेजी विभाग में वरिष्ठ रीडर के पद पर बरसों काम किया. सत्तर वर्षीय सलिल साहेब अब अपना सारा समय साहित्य साधना में लगाते हैं. उनकी शायरी सागरो मीना, गुलो बुलबुल, आशिक माशूक से आगे कि शायरी है. उनके तेवरों कि जरा बानगी तो देखिये :

रौशनी छीन के घर-घर से चरागों कि अगर/चाँद बस्ती में उगा हो, मुझे मंजूर नहीं.

हूँ मैं कुछ आज अगर तो हूँ बदौलत उसकी/मेरे दुश्मन का बुरा हो, मुझे मंजूर नहीं.

हो चरागां तेरे घर में, मुझे मंजूर 'सलिल'/गुल कहीं और दिया हो, मुझे मंजूर नहीं.

वाणी प्रकाशन द्वारा प्रकाशित इस किताब में इन्द्रधनुष के सारे रंग समेटे हर ग़ज़ल हीरे की कणी जैसी है. आज के जीवन कि त्रासदी को सलिल साहेब ने किस खूबसूरती से आसान लफ्जों में बयां किया है देखिये :

यहाँ इक-दूसरे के घर अभी तक लोग जाते हैं/तुम्हारे शहर कि ये सादगी अच्छी लगी हमको.

छुअन तक हम भुला बैठे थे जब ठंडी फुहारों की/किसी बच्चे की किश्ती कागजी अच्छी लगी हमको.

> इस किताब की ग़ज़लें इतनी सरल हैं कि पढ़ने वाला कब इन्हें गुनगुनाने लगता है पता ही नहीं चलता. बेहद सादा जबान इसकी सबसे बड़ी खासियत है. ये कमाल कोई अनुभवी ही कर सकता है और सलिल साहेब के पास लगता है अनुभव का खजाना है.

सफ़र से दुनिया के लौटे, खला में घूम आये जब/तो अपने गाँव कि इक-इक गली अच्छी लगी हमको.

प्रसिद्ध साहित्यकार विष्णु प्रभाकर साहेब ने लिखा है 'सलिल साहब ग़ज़ल लिखना जानते हैं और लिखते रहेंगे. हमें आशा है कि एक दिन ग़ज़ल कि दुनिया में उनका नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा क्यूँ कि उनके कहने में सादगी और सलीके के साथ ग़ज़ल कि गहराई भी है.' प्रभाकर साहेब कि बात को सिद्ध करने के लिए नहीं सिर्फ आपको उनकी शायरी का विस्तार दिखाने के लिए उनके ये शेर पढ़ने की दावत देता हूँ :

सर के बल आऊँ तेरे घर मैं तो लेकिन इससे क्या/तू मिला न राह में तो फ़ासला रह जायेगा.

■

महेंद्र दवेसर 'दीपक'

१४ दिसम्बर, १९२९ को नयी देहली में जन्म. प्रभाकर, बी.ए., एम.ए. फ़ाइनल (अर्थ-शास्त्र). भारत सरकार की विदेश-सेवा अवधि में इंडोनेशिया में Radio Republic Indonesia के हिंदी यूनिट का संस्थापन, संचालन. १९७१ से लंदन में निवास. कहानी संग्रह 'पहले कहा होता', 'बुझे दीये की आरती', 'अपनी-अपनी आग' प्रकाशित. पद्मानन्द साहित्य सम्मान से सम्मानित. 'दो पाटन के बीच' कहानी कमलेश्वर कहानी पुरस्कार से पुरस्कृत.

सम्पर्क : 70 Purley Downs Road, South Croydon, Surrey, CR2 ORB. ईमेल : mpdwesar@yahoo.co.uk

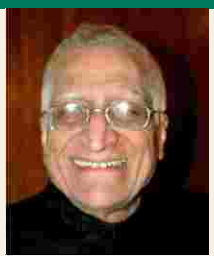

कहानी

सोना लाने पी गए

बहुत दूर अतीत में पीछे रह गए वे दिन जब नई भोर के स्वागत में चिड़ियां चहचाया करती थीं. अब तो यह संगीत कभी-कभार ही सुनने को मिलता है. बस बोतलें बजती हैं दूध की भरी या ख़ाली बोतलें. सबेरे-सबेरे वे गाड़ियों में आते हैं और ग्राहकों के द्वार पर भरी बोतलें रख जाते हैं और ख़ाली बोतलें उठा ले जाते हैं. बोतलों की यह टनन-टनन भी अब कम होती जा रही है क्योंकि दूध सुपरस्टोर्ज़ में सस्ता मिलने लगा है.

दूध ही तो चाहिये रीमा को. वह कल शाम ही इस किराए के मकान में आयी है पति निशीथ के साथ. एक उनका बेटा है पांच वर्ष का नीरज. कल रात वे थके हारे कुछ भी खाकर सो गए थे. निशीथ को तो सुबह-सुबह बेड-टी चाहिए होती है और नीरज को भी दूध देना होता है. आज वह देर से उठी. कांच से कांच का - बोतलों का - टकराव तो वह सुन न सकी. अब दूध कहां से आए?

अकारण ही उसने किचन का दरवाज़ा खोला. यह कैसा संयोग था कि बग़ल वाले घर के फ़ेंस की दूसरी तरफ़ खड़ी थी एक अपूर्व सुंदरी. उसकी आवाज़ कानों में खनखनाई, बाजी.

आमतौर पर यहां वार्तारम्भ 'हाय' या 'हैलो' जैसे शब्दों से होता है. इनमें 'बाजी' जैसे संबोधन का अपनत्व कहां? फिर जिस अपनत्व से उसने पुकारा था उसी अपनत्व से वह बोली, आप लोग तो कल शाम ही यहां आए हैं, किसी चीज़ की ज़रूरत हो तो बेझिझक कहिए.

यह थी शमीम!

थैंक यू, ये तो अभी सोए पड़े हैं. उठेंगे तो चाय मांगेगे. यहां पास में कहीं से दूध मिल सकेगा? शमीम ने कोई उत्तर नहीं दिया. वह तुरंत अंदर गयी और दूध की एक बोतल उठा लाई. उसी शाम रीमा फ़ेंस के ऊपर से ही बोतल के बदले बोतल लौटाने लगी. रहने भी दीजिए. एक निगोड़ी दूध की बोतल ही तो है.

बोतल तो आपको लेनी पड़ेगी.

बोतल मैं ले लूंगी, मगर आपको नए पड़ोसी होने की रस्म निभानी पड़ेगी.

रीमा बोतल लेकर पहुंच गयी. शमीम ने अपनी दोनों बेटियों से मिलवाया.

शाहज़िया, उम्र चार साल और शहनाज़, उम्र पांच साल. शहनाज़ तो नीरज की हम-उम्र निकली जो उस समय मां के साथ आया हुआ था. बच्चों में दोस्ती होना स्वाभाविक था. दोनों घरों में आना-जाना शुरू हो गया. रीमा जल्दी ही समझ गयी कि शमीम बिल्कुल अनपढ़ है. शायद अपनी इसी कमज़ोरी को छुपाने के लिए वह हमेशा अपने पूरे मेकअप में रहती है. नए से नए फ़ैशन करती है. जब लोग ऐसे हुस्न से दो-चार होते हैं तो प्रशंसा में नज़रें उठती हैं और द्वेष में उंगलियां!

क्रिकलवुड लंदन के उत्तर-पश्चिम में स्थित एक बस्ती है. अब अंग्रेज़ी शब्द 'क्रिक' के माने हुए ऐंठन, तनाव! तनाव जैसे गर्दन का, पीठ का या फिर पूरे बदन का. लगता है यहां इस तत्त्व की कोई कमी नहीं. यदि 'क्रिकलवुड' न होकर इस स्थान का नाम होता 'क्रैकलवुड'मतलब जलती लकड़ी का तिड़कना, चटख़ना तो यह और भी उचित होता. यहां के अधिकतर घर ऐसे हैं जिनकी बाह्य दीवारें आपस में जुड़ी हुई हैं. इन घरों की मरम्मत होती होगी, बराबर होती होगी. फिर भी यह चरमराते, चटख़ते से दिखते हैं. लगभग सौ साल पुराने इन जुड़े घरों की दीवारों के कान ही नहीं, आंखें और होंठ भी

होते हैं. यह दीवारें सुनती ही नहीं, देखती और बोलती भी हैं. तभी तो रीमा और शमीम की बढ़ती दोस्ती और घनिष्टता की ख़बर जल्दी ही दूर-दूर फैल गयी. सड़कों पर ठूंसे गए घरों में ऐसा ही होता है. यहां दीवारें भी बोलती हैं?

एक शाम जब शमीम रीमा के यहां आई हुई थी तो निशीथ ने पूछा, शमीम जी, आपके ख़ाविंद कहां होते हैं? कभी उनसे भी मिलवाइये. क्या बताऊं? मैं तो ख़ुद तंग आ गई हूं अमीन के दौरों से. कभी वो कहां होते हैं, तो कभी कहां. बस तीन-चार दिन बाद उनका फ़ोन आ जाता है? कभी कहीं से, कभी कहीं से! उनका कारोबार ही ऐसा है. लाख समझाया कि पैसा ही सबकुछ नहीं होता, मगर वो मानें तब ना!

तो भाई साहिब करते क्या हैं?

ठीक से तो मेरी समझ में भी नहीं आया. बस यही, इधर ख़रीदा तो उधर बेचा. उधर ख़रीदा, इधर बेचा. आजकल वो सिंगापुर में हैं.

रीमा को अमीन के कारोबारी दौरों और उसके सिंगापुर में होने की हक़ीक़त भी जल्दी ही समझ में आ गयी. एक दिन वह शॉपिंग के लिए कहीं बाहर जा रही थी. रास्ते में उसे मिल गयी मिसेज़ सहगल.

आप शमीम की नयी पड़ोसन हैं न?

जी.

उससे दूर रहेंगी तो ठीक रहेगा. नहीं तो बिन बात बदनाम हो जाएंगी.

ऐसा ही कुछ मिसेज़ क़ुरैशी, मिसेज़ कपूर और तनेजा साहिब ने भी कहा.

रीमा चौंकी. उसकी समझ में आने लगा की शमीम किसी कीचड़ में फंसी पड़ी है और छींटे उड़ेंगे और यह भी कि छींटों को पहचान नहीं होती कि कौन कितना साफ़ है, कौन कितना मलिन!

छींटों की दिशा तो वह बदल नहीं सकती थी. उसने अपनी ही दिशा मोड़ ली. यह था भी सरल! नीरज को स्कूल में डालकर रीमा ने पार्ट-टाइम नौकरी शुरू कर ली. उसने नीरज के सहपाठी बच्चों की माओं और कंपनी के सहयोगियों के साथ मेलजोल बढ़ा लिया. फ़ालतू समय में वह इन नई सहेलियों के साथ कॉफ़ी-पार्टियों में शामिल हो जाती. उन्हीं के साथ शॉपिंग के लिए निकल जाती.

इन्हीं मुलाक़ातों, पार्टियों में शमीम के पति अमीन के कारोबारी दौरों की कहानी खुल गयी. पता चला कि जनाब ग़ैर-क़ानूनी ढंग से इंगलैंड में बसने के लिए कुछ लोगों को लाते हुए रंगे हाथों पकड़े गए और लंदन की एक जेल में चार साल के लिए आराम फ़र्मा रहे हैं. पति की अनुपस्थिति में और भी जो गुल खिलाए जा रहे हैं, उनकी चर्चा भी इन महफ़िलों में होती.

शमीम के गुलिस्तान में जो फूल खिल रहे थे, उनके नाम हैं – आरिफ़, आफ़ताब, रफ़ीक़ और जमील. आरिफ़ और आफ़ताब तो लंदन ट्रांसपोर्ट में बस कंडक्टर हैं. रफ़ीक़ एक टैक्सी चलाता है और जमील किसी फ़ैक्टरी में काम करता है. इनमें किसकी दाल गलती है, किसकी नहीं कौन जाने? वैसे आमतौर पर वह रफ़ीक़ की टैक्सी में घूमती देखी गयी है. कई तो कहते हैं कि जबसे अमीन को जेल हुई है, दाल तो तभी से गली गलाई थी. एक अकेली ख़ूबसूरत जवान औरत और इर्द-गिर्द पुरुषों की भीड़, यह सब तो होना ही था. कहने को वे सब किरायेदार हैं, लेकिन क्या वे किरायेदार ही हैं? कभी कभी तो लगता है कि ये उसकी राह के कांटे हैं. एक ख़याल यह भी है कि वह स्वयं अपना कांटा आप है. नहीं तो वह अपनी इच्छा से इन लोगों को अपने घर में क्यों रखती?

एक और है, प्रफ़ुल्ल बिस्वास! वह एक बंगलादेशी है. वह भी यहीं कहीं एक फ़ैक्टरी में काम करता है और रहता है सड़क के उस पार शमीम के घर के सामने वाली कतार के एक घर में. वैसे तो वह अकेला है, फिर भी उसने पूरा घर संभाल रखा है. सुनते हैं कि उसका परिवार कहीं बंगलादेश में है और यह घर उसने उन्हीं के लिए ख़रीदा था. मगर उनको यहां आने का वीज़ा नहीं मिल सका. यह ही साल दो साल में एक बार उनसे मिल आता है.

प्रफ़ुल्ल बिस्वास शमीम के सभी किरायेदारों से बढ़कर आकर्षक है और अमीर भी. वह अपना नाम प्रफ़ुल्ल नहीं, बंगाली अंदाज़ से प्रोफ़ुल्ल बताता है. शमीम का नाम हो जाता है शोमीम. उसके नाम का अन्तिम 'म' वह इस तरह से गटक जाता है कि सुनने वाला सुनता है शो मी!

मिसेज़ शो मी यानी शमीम प्रफ़ुल्ल को क्या दिखलाती है

या उसमें क्या देखती है, कौन जाने? लेकिन हर तीसरी चौथी शाम वह प्रफुल्ल के घर में होती है. सजी, संवरी. अपनी सभी बिजलियों के साथ. फिर जब वह वहां से निकलती है भरी-भरी, खिली-खिली सी अपने आभूषणों में, तो वह और भी सुंदर लगती है. क्या वह किसी का विश्वास भंग कर रही है? यह तो वे दोनों ही जानते होंगे.

वह ईद का दिन था. उसी शाम रीमा शमीम के यहां पहुंच गयी. हाथ में थी रूमाल में लिपटी सवैयों की प्लेट. उस समय निशीथ भी घर में था. आज ईद है ना! आपको ईद की सवैइयां खिलाऊं ताकि जब दीवाली आए तो आप भी हमें याद रखें. वह हंसती हुई बोली. फिर वह रीमा से गले मिली.

रीमा और निशीथ ने भी जवाब में ईद मुबारिक कह दिया. फिर निशीथ ने पूछा, आज के दिन तो अमीन भाई साहिब भी घर पर होंगे. उन्हें भी हमारी ओर से ईद मुबारिक कहिये.

शमीम की आंखों में आंसू आ गए, आज के दिन झूठ नहीं बोलूंगी. अमीन किसी दौरे-वौरे पर नहीं हैं. वो तो पिछले तीन साल से जेल में पड़े हैं. अभी एक साल की सज़ा बाक़ी है.

> *तुमने कहा नहीं पर तुम्हारे दिल की बात मैंने पढ़ ली है. दिल से तो तुम्हारी यही मर्ज़ी है. तुम यह भी भूल गयी कि तुम ही थी जो सालों से मेरे पीछे पड़ी हुई थी कि तुम्हारे तीन नालायक़भाईयों को किसी तरह यहां लाकर बसा दूं.*

क्यों क्या हुआ था?

कुछ अपने ही लोग थे. उन्हें यहां बसाने के लिए चोरी-छिपे ट्रक में ला रहे थे. क़िस्मत ख़राब थी, पकड़े गए. उसने जुर्म का औचित्य भी समझाया, देखिए न भाई साहिब! यह लोग दो सौ साल हम पर हुकूमत कर गए. क्या इसमें हमारी कोई मर्ज़ी थी? क्या हमने कहा था, आओ और हम पर ज़ुल्म करो? मतलब यह कि अमीन की यह हरकत जुर्म नहीं थी, प्रतिशोध था, जिसकी ज़िम्मेदारी अकेले अमीन पर थी.

नीरज उन दिनों बीमार चल रहा था. शमीम उसकी मिज़ाज पुर्सी को पहुंच गयी और अपने पति की जेल-यात्रा को लेकर लगी समझाने, बाजी, इस मुल्क में जेल जाना कोई बड़ी बात नहीं! बड़े-बड़े लोग भी जेल हो आते हैं, अपनी सज़ा काटते हैं और फिर बेदाग़ होकर नए सिरे से ज़िंदगी शुरू कर लेते हैं.

एक दिन वह फिर आई. दो सौ साल तक चले अंग्रेज़ी राज के ज़ुल्मों को आज वह भूल चुकी थी और बखान करने लगी सरकार की मेहरबानियों की. जब घर का अकेला कमाऊ आदमी जेल में तो सरकार उसके बीवी-बच्चों का पूरा ध्यान रखती है. दोनों लड़कियों का भत्ता तो मुझे पहले ही मिलता था, अब तो उनका दूध भी मुझे मुफ़्त मिलता है. सरकार की तरफ़ से बच्चों के नए कपड़ों के लिए भी पैसे मिलते हैं. क्योंकि मेरी अपनी कोई आमदनी नहीं है, मुझे अलग से अपना भत्ता मिलता है. मैं भी कोई कम नहीं. मैंने चार कमरे किराए पर चढ़ा रखे हैं. किराएदारों को अपने कमरों को ताला लगाने की मनाही है ताकि अगर कभी सरकारी चेकिंग हो भी जाये तो मैं पकड़ी न जाऊं.

रीमा के मुंह से निकल गया, अगर आपकी किरायेदार लड़कियां होतीं तो वह ज़्यादा अच्छा न होता? नहीं. एक तो लड़कियों के अपने पर्दे होते हैं. वो हमेशा अपने कमरे बंद रखना चाहतीं और ताले ज़रूर लगातीं. दूसरे, उनके यहां रहने से भंवरों का मंडराना शुरू हो जाता.

रीमा शरारतन मुस्कराई और सोचने लगी क्या अंदाज़ हैं भंवरों से बचने के. उन्हीं के बीच रहने लगो. बदनामी होती है तो हो.

शमीम ने यह भी बताया कि सरकार की तरफ़ से एक मेम उसे अंग्रेज़ी सिखाने घर आती है. पति से मिलने जेल जाने और वापस लाने के लिए सरकारी गाड़ी आती है. मतलब यह कि इस देश में जेल हो जाना सज़ा नहीं, एक उपलब्धि है!

अमीन की रिहाई को अब छः ही महीने रह गए हैं. शमीम उसे मिलने जेल पहुंची हुई है. आज अमीन बहुत ख़ुश है. उसकी आंखों की चमक और होंठों की मुस्कान बहुत कुछ कह रहे हैं. अपने बीवी-बच्चों को देखकर तो वह और भी खिल उठा. एक ख़ुशख़बरी है. हमारी मुलाक़ातों के दिन बढ़ गए हैं?

नहीं.

तुम्हें कुछ दिनों की पैरोल मिल रही है?

नहीं, यह भी नहीं.

तो फिर क्या?

बढ़िया बर्ताव और अच्छे चाल-चलन की वजह से क़ैद में चार महीने की छूट मिल गयी है. अब मैं दो ही महीनों में घर आ जाऊंगा.

शमीम भी मुस्कराई, यह तो बहुत बढ़िया ख़बर है. दोनों बच्चियों ने भी ताली बजाई.

फिर थोड़ा रुककर, ज़रा हिचकिचाती हुई सी शमीम बोली, एक ज़रा सी गड़बड़ हो गयी है.

कैसी गड़बड़?

छोड़ो. रहने दो.

फिर भी?

हमारे सामने वो जो बंगलादेशी रहता है.परफुल, परफुल बिसवास. दिन में तो वह और कहीं काम करता है पर शाम को घर में ही सुनार का काम करता है. जो पैसा हमारे पास था वो तो सब तुम्हारे मुक़दमे में लग गया. घर के चार कमरे मैंने किराये पर दे रखे हैं. घर का ख़र्चा अलग रखकर पूरा किराया और सरकार की तरफ़ से जो पैसा मुझे मिलता है, उस सब के ज़ेवर बनवा लिए हैं.

परफुल सोना तो बाज़ार के भाव ही देता है मगर ज़ेवरों की बनवाई तो बाज़ार से बहुत सस्ती होती है. फिर वह उनपर हॉल मार्क भी लगवा देता है. बस सोने की क़ीमत पेशगी दे दो, अपनी मज़दूरी तो वह किश्तों में भी ले लेता है.

एक अद्‌भुत सी चमक, एक अजीब सा नशा था शमीम की आंखों में जब वह चहकी, हाय अल्लाह! कैसे कैसे तो बढ़िया डिजैन हैं उसके पास! एक किलो से ज़्यादा सोना तो अब मेरे पास भी हो गया है.

अमीन के दिल पर क्या गुज़र रही थी, शमीम न समझ सकी जब उसने पूछा, हां, तो बहुत बढ़िया डिज़ाइन हैं तुम्हारे इस परफुल के पास?

शानदार!

और वह पैसे भी किश्तों में ले लेता है? शमीम ने हां में सिर हिला दिया.

फिर तो कोई मुश्किल ही नहीं. तुम बनवाती रहो अपने सोने के झुनझुने. पहनो उन्हें, छनकाओ उन्हें! मेरा क्या, मैं तो मिट्टी हूं. मेरी जान की, मेरी ज़िंदगी की कीमत ही क्या है? छह महीने और सड़ लूंगा यहां जेल में.

मैंने यह कब कहा.

तुमने कहा नहीं पर तुम्हारे दिल की बात मैंने पढ़ ली है. दिल से तो तुम्हारी यही मर्ज़ी है. तुम यह भी भूल गयी कि तुम ही थी जो सालों से मेरे पीछे पड़ी हुई थी कि तुम्हारे तीन नालायक़ भाईयों को किसी तरह यहां लाकर बसा दूं. सीधी राह से उन्हें वीज़ा मिल नहीं रहा था. मैंने कोशिश की और पकड़ा गया. उन्हीं की वजह से मैं यह क़ैद भुगत रहा हूं.

ख़ाक डालो इस बात पर! हम बहुत ख़ुश हैं कि तुम जल्दी घर लौट रहे हो. तुम भी खुशी-खुशी घर आओ.

दो महीने बाद अमीन घर लौट आया. शमीम ऊपर से तो बहुत ख़ुश लगती है. लेकिन 'ख़ाक डालो' कह देने भर से अंदर की चिंगारी राख तो नहीं हो गयी. वह तो अब भी सुलग रही है. अगर अमीन सिर्फ़ चार महीने और कुल चार महीने... और भी कितना सोना जमा हो सकता था!■

भूपेन्द्र कुमार दवे

जन्म : २१ जुलाई १९४१. शिक्षा : बी.ई. आनर्स, एफ.आई.ई., कहानी और कविताओं का आकाशवाणी से प्रसारण. प्रकाशित कृतियाँ : ३ खंड काव्य, १ उपन्यास, ५ काव्य संग्रह, २ गज़ल संग्रह, ७ कहानी संग्रह एवं २ लघुकथा संग्रह. मध्यप्रदेश विद्युत मंडल द्वारा कथा सम्मान. त्रिवेणी परिषद द्वारा उषा देवी मित्रा अलंकरण प्राप्त. संप्रति : भूतपूर्व कार्यपालन निदेशक, मध्यप्रदेश विद्युत मंडल.

सम्पर्क : b_k_dave@rediffmail.com

बोध-कथा

संत का स्वागत

एक राज्य पूर्ण रूप से संपन्न था. हरेक के पास खूब धन-दौलत थी. अन्न-जल की भी कोई कमी नहीं थी. बस कमी थी तो एक संत की, जो राज्य में सत्संग की भूमिका निभा सके. कालान्तर राजा को खबर मिली कि एक संत जंगल से होकर उसके राज्य की तरफ आ रहे हैं. राजा ने तुरंत उस संत के स्वागत की तैयारी प्रारंभ करवा दी. राजा ने स्वयं संत के स्वागत की अगवानी की. परन्तु संत इस भव्य स्वागत से प्रभावित नहीं हुए. उन्हें तो प्यास लगी थी. उन्होंने पानी पीने की इच्छा व्यक्त की तो राजा ने तुरंत अपने सेवकों को पानी लाने का संकेत किया. संत प्रतीक्षा करते रहे, पर पानी काफी देर तक नहीं आया. संत को प्यास में तड़पता देख राजा स्वयं पानी लाने दौड़ पड़ा.

रास्ते में उसने देखा कि नगाड़े और तुरही बजाते उसके अनुचर सोने-चाँदी की थालें सजाये, चंवर झुलाते हुए पानी की रत्नजड़ित सुराही व जलपात्र लिये चले आ रहे थे. अनुचरों की भीड़ गाती-बजाती, नाचती-झूमती, मस्ती में चली आ रही थी. संत के प्रति उनका यह आदरभाव देख राजा भी गद्‌गद् हो उठा. अनुचरों की श्रद्‌धा देख राजा ने भी आगे बढ़कर पानी की सुराही व जलपात्र की थाल अपने सिर पर ले ली और वह भीड़ की अगुवाई करता संत की तरफ झूमता चलने लगा.

सुराही का पानी छलकता रहा और पानी की छलकती बूँदों को देख भीड़ में संत को पानी पिलाने की चाह द्विगुणित होने लगी. वे और झूम झूमकर नाचने लगे.

आखिरकार वे संत के पास पहुँच गये. एक पेड़ के तने से टिके संत बैठे थे. राजा ने सोने की थाली उनके सामने रखी और सुराही उठाकर उसी तरह नाच किया जैसे मंदिरों में आरती की जाती है. परन्तु जब संत को पानी पिलाने का वक्त आया तो सब स्तब्ध रह गये. संत के प्राणपखेरू उड़ चुके थे, ठीक उसी तरह जैसे सोने की सुराही से जल की अंतिम बूँद छलककर सुराही को खाली कर चुकी थी.■

विश्वजीत 'सपन'

भारतीय पुलिस सेवा में कार्यरत सपन लेखन, अनुवाद, गायन, संगीत रंचना आदि में रुचि रखते हैं. इनकी अब तक की प्रकाशित पुस्तकें हैं - अतीत का दामन (कथा-संग्रह), अनसिला वस्त्र, (उपन्यास), आतंकवाद एक परिचय (शोध एवं संदर्भ ग्रंथ), माँ तुझे सलाम (देशभक्ति गीत-संग्रह).

सम्पर्क : sipin391@yahoo.co.in

कहानी

नई शुरुआत

पिछले तीन दिनों से हमारे बीच शीत युद्ध चल रहा था. हम एक-दूसरे को देखते थे, लेकिन बात नहीं करते थे. सुबह-सवेरे अपने-अपने दफ्तरों के लिए निकल जाने के बाद शाम को ही मिल पाते थे. इस बीच हमें आपस में बात करने का मौका भी नहीं मिल पाता था. वैसे अन्य सामान्य दिनों में दफ्तर में भी टेलीफोन पर बातें होती रहा करती थीं, लेकिन जब भी शीतयुद्ध चलता था तो हमारे फोन की घंटी घनघनाती नहीं थी. हम फोन को देखते अवश्य थे. ऐसी अपेक्षा भी रहती थी कि उसकी घण्टी घनघनाये, लेकिन पता नहीं क्यों हम रुक जाते थे. ऐसा प्रतीत होता है कि हमारा अहम् हमें एक-दूसरे के हाल-चाल पूछने को भी मना कर देता था.

मुझे याद है, जब हम पहली बार मिले थे. एक-दूसरे से बातें किए बग़ैर हमें नींद नहीं आती थी. रात में चुपके से टेलीफोन पर हमारा कब्ज़ा होता था. बिस्तर पर पड़े-पड़े घंटों एक-दूसरे से बातें किया करते थे. फिर एक साल के अन्दर ही हम पति-पत्नी थे. हमारी खुशियों का दौर प्रारंभ हो गया. ऐसा लगता था कि इस दुनियाँ में बस हम ही दो थे और यह दुनिया केवल हमारे लिए ही बनी थी. उस समय हमने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि एक दिन ऐसी भी नौबत आएगी जब हम एक-दूसरे से बात भी नहीं करेंगे. एक ही घर में रहेंगे, लेकिन एक-दूसरे के सामने आने से कतरा जायेंगे. उस समय तो सबकुछ जैसे अच्छा ही होता था. हमने कभी किसी चीज़ के लिए ना नहीं कहा होगा. समय बीतता गया और हमारे संबंधों के बीच में व्यावहारिकता और व्यावसायिकता ने अपनी भूमिकाएँ निभानी प्रारंभ कर दीं.

कभी लगता था कि ऐसा हमारे ही साथ क्यों हो रहा था, लेकिन जब आस-पास देखा तो लगा कि नहीं हम अकेले नहीं थे. शायद यही दस्तूर था. आधिक्य हमेशा ही हानिकारक होता है, चाहे वह प्रेम ही क्यों न हो, संबंध ही क्यों न हो! हमारे संबंधों में भी मनमुटाव और छोटी-छोटी बातों ने अपना घर बसाना प्रारंभ कर दिया था. अब हमें एक-दूसरे की हर चीज़ भाती नहीं थी. कमी निकालना जैसे हमारा पेशा बन गया था. इस बीच अचला गर्भवती हो गई. एक अच्छे पति की भाँति मैंने सारे मनमुटाव खत्म कर दिए. अचला भी खुश थी कि बच्चे ने हमारी ज़िन्दगी को एक नया पहलू और एक नई दिशा दे दी थी.

फिर संजय का जन्म हुआ. पहले बच्चे का सुख क्या होता है, इसका अनुभव हमें सराबोर कर गया. उसके नन्हें-नन्हें हाथों ने हमारे जीवन में एक नया रोमांच भर दिया. लेकिन उसके बाद पहली बार उसके नाम को लेकर हमारे बीच में विवाद उत्पन्न हुआ, जो बहुत दिनों तक चला. हमने सोचा कि ऐसे विवाद तो होते ही रहते हैं और हर पति-पत्नी के बीच में होते हैं. अब लगता है कि हमने समझने में भूल की थी. वह विवाद यूँ ही नहीं हुआ था. हमारे अहम् थे, जो हमें धीरे-धीरे निगल रहे थे.

अब संजय नौ साल का हो गया है. चौथी कक्षा में पढ़ता है. लेकिन अब हमारे बीच विवादों का सिलसिला गहरा गया है. सबकुछ अजनबी सा प्रतीत होने लगा है. हमारे बीच में जहाँ एक-दूसरे की कमियों को दूर करने की होड़ लगी रहती थी, अब हम उन्हीं कमियों को उभार कर एक-दूसरे को चोट पहुँचाने के अवसर ढूँढते रहते थे. अब लगता था कि तेरह साल बाद भी हम एक-दूसरे को समझ नहीं पाए थे. दरअसल हम यह समझना ही नहीं चाहते थे कि हमें एक-दूसरे को समझने का प्रयास करना चाहिए. शादी के पूर्व हमें एक-दूसरे

की सभी आदतें पसंद थीं, लेकिन अब वे ही हमारे विवाद के कारण बन रहे थे. अगर मुझे लिखने का शौक था तो अचला को इन्टरनेट पर चैट करने का. शीत-युद्ध के समय हम इन्हीं शौकों के गुलाम हो जाया करते थे.

शुरु-शुरु में हमारे मनमुटाव क्षणिक होते थे. तब हम दोनों ही एक-दूसरे को मनाने का बहाना ढूँढ लिया करते थे. लेकिन अब हमें बहाना नहीं मिलता था या फिर यूँ कहें कि हम कोशिश नहीं करते थे. यह भी एक अजीब इत्तेफाक है कि अक्सर हमारा मनमुटाव संजय की परवरिश को लेकर शुरु होता था जो बढ़कर एक भयानक शीतयुद्ध को जन्म दे जाता था.

हमारा उद्देश्य एक ही था - संजय की अच्छी परवरिश करना और उसे एक अच्छा एवं सफल आदमी बनाना. वहीं हमारा माध्यम थोड़ा भिन्न था. जहाँ मैं केवल अच्छी आदतों पर ध्यान दिया करता था वहीं अचला अधिकतर उसकी पढ़ाई पर. यहीं से टकराव शुरू होता था. बीच में संजय पिसता चला जाता था. कई बार ऐसा भी वक्त आता था जब वह माता-पिता दोनों के प्यार से महरूम हो जाता था. यह बात हम दोनों को खलती थी. उसे किसी एक का डाँटना-फटकारना दूसरे को बुरा और अमानवीय लगता था, जो हमारे बहस का मुद्दा बन जाता था. लेकिन हम स्वयं डाँट रहे होते थे तो अपेक्षा यह रहती थी कि दूसरा कुछ न बोले, वरना बच्चा इसका लाभ उठा सकता था और उसकी नज़र में हमारी इज़्जत कम हो सकती थी. इस प्रकार हमें तब एक-दूसरे को टोकना नहीं था.

यह भी सच है कि स्कूलों की पढ़ाई कठिन हो चुकी है. बच्चों के बचपने पर अनायास ही अत्यधिक बोझ डाल दिया गया है. बढ़ती प्रतियोगिता और घटते अवसरों ने स्कूलों की शिक्षा को बोझिल और नामुमकिन-सा बना दिया है. मैं अपना बचपन याद करता था, तो संजय को बस्ते के बोझ से पिसता पाता था. पाँच साल तक तो हमने स्कूल का रुख भी नहीं किया था. अब तो एक-डेढ़ साल के बच्चे भी प्ले स्कूल में चले जाते हैं. उसके बाद नर्सरी, केजी और अपर केजी आदि कक्षाओं को सफलतापूर्वक पूरा करने पर ही प्रथम कक्षा में प्रवेश मिल पाता है. ऐसे में पढ़ाई का बोझ तो निस्संदेह बच्चों पर होता है और इसलिए अचला का संजय की पढ़ाई को लेकर चिंता करना असामान्य नहीं था. लेकिन न जाने मुझे क्यों ऐसा लगता था कि संजय के अभी केवल खेलने-कूदने के दिन थे और उस पर पढ़ाई के लिए इतना बोझ देना गलत था. हालाँकि उसके कक्षा में अंतिम दस में आने से मुझे भी दुःख पहुँचता था. अचला बार-बार मुझसे यही कहा करती थी कि संजय को अपनी कक्षा में प्रथम आना चाहिए और तभी वह

अजीब उलझन थी. न बोलूँ तो संजय पिसता रहता था और बोलूँ तो अचला नाराज होती थी. बाद में कभी बोलूँ तो कहती थी कि तुम्हीं पढ़ाया करो, मुझे नहीं पढ़ाना उसे.

आगे बढ़ पायेगा. उसका कहना कुछ हद तक सही भी था, लेकिन मेरा मन नहीं मान पाता था.

ऐसा नहीं था कि हमने कभी प्रयास ही नहीं किये थे. दरअसल हमने कई बार प्रयास किए. कई बार बातें कर हमने हमारे मध्य उफन रही इस बेबुनियादी समस्या का हल निकालने का प्रयत्न भी किया. किन्तु हर बार वह प्रयास बिना निष्कर्ष के एक और शीतयुद्ध में तब्दील हो गया था. अब तो स्थिति लगभग बेकाबू हो चली थी. कहीं इसका अंत तलाक तो नहीं! कई बार मैं सोचकर घबरा जाता था. फिर मन को बड़ी मुश्किल से समझाकर कहता - नहीं, ऐसा नहीं होगा. ऐसा नहीं होना चाहिए. हमें कोई न कोई रास्ता अवश्य निकालना चाहिए.

अचला एक बार संजय को पढ़ाने लगती थी तो उसे समय का ज्ञान नहीं रह पाता था क्योंकि वह चाहती थी कि संजय न केवल उस पाठ को समाप्त करे, बल्कि जितना और अधिक हो सके उतनी पढ़ाई उसी समय कर ले. तब संजय ऊँघता हुआ आनाकानी करता और मार-पिटाई की नौबत आ जाती थी. मैं टोकता तो उसका कहना था कि ऐसी बातें बच्चे के समक्ष नहीं करनी चाहिए क्योंकि बच्चे के दिमाग में यह बात घर कर जाती है कि उसकी माँ उसके साथ गलत कर रही है. यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है और सही भी है, परन्तु मैं संजय की हालत और उसके रोने से मजबूर होकर कुछ न कुछ कह बैठता था.

एक दिन ऐसा ही कुछ माहौल था. मुझसे रहा नहीं गया और मैं बोल पड़ा - 'पढ़ाना आवश्यक है, लेकिन समय का भी खयाल रखो. वह अभी बच्चा है, नादान है.'

मेरा इतना कहना होता था कि अचला बिफर कर बोली - 'तुम्हें तो फुरसत नहीं है. सुबह दफ्तर और शाम को दोस्तों की मजलिस. एक मैं ही हूँ जो सर खपाती हूँ. ऊपर से तुम्हारा यह दर्शन मुझे परेशान करता रहता है कि मैं जो भी करती हूँ, गलत ही करती हूँ. और वैसे भी यही बात तुम मुझसे अकेले में भी कह सकते थे. संजय के सामने कहने की क्या जरूरत थी? देखा नहीं तुमने अब वह मेरी शिकायत तक करने लगा है. वह सोचता है कि तुम अच्छे हो और मैं खराब.'

अजीब उलझन थी. न बोलूँ तो संजय पिसता रहता था

और बोलूँ तो अचला नाराज होती थी. बाद में कभी बोलूँ तो कहती थी कि तुम्हीं पढ़ाया करो, मुझे नहीं पढ़ाना उसे. मैं इस बात से भी बखूबी इत्तेफाक रखता था कि वह अपनी ओर से बहुत ही मेहनत किया करती थी. वह चाहती थी कि हमारा बेटा पढ़ाई में अच्छा करे. उसके पास समय भी था. दोपहर बाद उसे स्कूल से छुट्टी मिल जाया करती थी. मैं शाम को ही घर आ पाता था. किन्तु मुझे बार-बार ऐसा महसूस होता था कि छोटे बच्चे पर इतना बोझ कहीं उसे कुंठित न कर दे.

'अचला, समझने की कोशिश करो. वह अभी छोटा बच्चा है. उस पर इतना बोझ.'

'हाँ-हाँ, मैं तो कुछ समझती ही नहीं. ठीक है, आज से तुम ही पढ़ाओ. मैं कुछ नहीं बोलती उसे.'

और अचला हथियार डाल देती. मुझे मजबूरन चुप होना पड़ता था. मेरे पास समय नहीं था. ऐसा मुझे लगता था. टाइम मेनेजमेन्ट पर कई किताबें पढ़ डाली, लेकिन कोई हल नहीं निकल पाया. आदमी अपनी आदत से मजबूर होता है. मैंने महसूस किया कि पति-पत्नी दोनों ही काम करने वाले हों तो अहम् की टकराहट होती ही है. कोई किसी से किसी मायने में कम आँके जाने के लिए तैयार नहीं होते हैं, तब अक्सर विवाद होने लगते हैं.

एक दिन हमारे पड़ोसी सिन्हा जी घर पर आए. हमारे शीतयुद्ध का समय था. बड़ी मुश्किल से अचला को चाय-नाश्ता बनाने पर राज़ी किया. गनीमत थी कि संजय पड़ोसी के घर गया हुआ था.

बात ही बात में सिन्हा जी कह उठे - 'तो संजय ज़रूर अपनी माँ का लाडला होगा.'

'अरे नहीं, नहीं ऐसी बात नहीं है. वह तो मुझसे ही ज़्यादा घुला-मिला है.' मैं बोल गया था. फिर मैंने स्वयं को संभाला और बात बदलते हुए पूछा - 'आपका बेटा विकी किसको पसंद करता है?'

'देखिए झा साहब, मेरा बेटा विकी तो अपनी माँ के पास ही रहता है. मुझसे थोड़ा दूर ही रहता है. मुझसे डरता भी है. अब देखिए न, मुझे समय तो है नहीं. बार-बार ज़िद करता है तो मैं उसे डाँट देता हूँ.'

'अच्छा!'

'अरे भाई, जान छुड़ाने का और कोई रास्ता भी तो नहीं है. दिनभर थके-माँदे घर पहुँचो और मुझे ये चाहिए, मुझे वो चाहिए की रट से छुटकारा पाने के लिए मुझे यही रास्ता अख़्तियार करना पड़ता है. अब देखिए एक को तो बुरा बनना ही पड़ेगा.'

'क्या मतलब?' मैंने पूछा.

'देखिए झा साहब, अगर माँ-बाप दोनों ही बच्चे को अधिक प्रेम करने लगें तो उसके बिगड़ जाने का ख़तरा बहुत बढ़ जाता है. साथ ही किसी एक से उसे डरना भी चाहिए वरना तो वह अपनी मनमानी ही करता रहेगा. अब आप अपने बच्चे को डाँटते नहीं होंगे, इसलिए वह आपसे चिपका रहता होता.'

मैं चुप हो गया. यह हमारे लिए एक और शीतयुद्ध का विषय बनने वाला था.

सिन्हा जी के जाने के बाद वही हुआ जिसका मुझे डर था.

'अब तो आपके दोस्त ने भी कह दिया कि दोष किसका है?'

'देखो, अचला.'

'अब तो तुम बात ही मत करो. तुम चाहते हो कि मैं अपने बेटे की नज़र में बुरी रहूँ और तुम अच्छे बने रहो. इसलिए जब भी मैं कुछ कहती हूँ तो तुम्हें बुरा लगता है.'

'अचला.'

उसने नहीं सुना और मुँह फुलाकर चली गई.

फिर ऐसी ही बहसों से हमारे बीच में स्थिति बद से बदतर होती चली गई. समय बीतता गया. हमारे संबंधों में दरारें पड़ने लगीं. उमस से सड़ी हुई गर्मी की गंध तीव्र होने लगी. दर्शन मेरा प्रिय विषय था. सोच को हावी होने दिया. शीत-युद्ध का समय था, इसलिए मेरे पास समय भी था. सोच हावी हो तो समस्या का समाधान अक्सर कहीं न कहीं से फूट ही पड़ता है. फिर एक दिन मैंने अचला से कहा.

'सुनो अचला, क्यों न हम बातचीत के जरिये इस समस्या का समाधान करें.'

'तुम्हारे पास समय ही कहाँ है बातचीत करने का.'

उसकी व्यंग्यात्मक वाणी मुझे चोट कर गई, लेकिन मैंने अपने आप पर काबू रखा और कहा - 'अब व्यंग्य करना छोड़कर हम बातचीत करें तो ही उचित होगा.'

'व्यंग्य तो तुम करते रहते हो. तुम्हारा विषय दर्शन है, मेरा नहीं.' अचला का मूड बिगड़ा हुआ था.

लेकिन उस दिन मैं दृढ़प्रतिज्ञ था. उसे मनाता रहा. पहले तो उसने अनसुना कर दिया और ऐसे ही किसी काम में लगकर मुझसे पीछा छुड़ाती रही. फिर हम इस बात पर राजी हुए कि हमें विचार करना चाहिए. समाधान ढूँढना चाहिए.

'देखो अचला, मैं तुम्हें गलत समझता हूँ और तुम मुझे. संभवतः यही समस्या की जड़ है. एक बात तो सच है कि हम दोनों सही नहीं हो सकते. कोई एक तो गलत होता ही है. क्यों न ऐसा करें कि हम यह मान लें कि हम दोनों ही गलत थे और एक नई शुरुआत करें, जहाँ एक-दूसरे को गलत समझने से पहले हम अपने आपको गलत मान कर चलें. फिर टकराव की गुंजाइश ही नहीं रहेगी.'

मैं दार्शनिक की भाँति बोलता गया. वह सुनती रही. समझती रही. फिर उसके मन में यह बात अटक गई. मैं स्वयं को भाग्यवान् समझने लगा. हमारी नई शुरुआत हो चुकी थी.■

रामकिशोर पारचा

फिल्म और टीवी के वरिष्ठ पत्रकार और रंगमंच के अभिनेता. फ्रेंच फिल्म समारोहों के सेंसर बोर्ड के भारतीय सदस्य. फ्रांस, इजरायल और भारत में कई फिल्म समारोह आयोजित किये. दिल्ली और जयपुर में होने वाले पहले अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह के निदेशक हैं. अनेकों प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में नियमित कॉलम प्रकाशित.

सम्पर्क : C-77, Krishi Vihar, opposit-Panchsheel Encleve, Near-Greater Kailsh 1, New Delhi-110048
email : 2photorkp65@gmail.com

सिनेमा की बात

एजेंट विनोद (एक्शन थ्रिलर)

देश, देश के लोग, उनकी सुरक्षा और उनका सम्मान किसी भी देशभक्त के लिए पहली शर्त होती है और यदि कोई देशभक्त देश की सेना या पुलिस के जासूसी विभाग से जुड़ा है तो फिर उसके लिए अपनी जान, प्रेम और परिवार कोई मायने नहीं रखता. सब कुछ उसके लिए बाद में आता है और देश को बचाने के लिए वो मौत की जिस हद तक जा सकता है उसका एक शानदार नमूना है निर्देशक श्रीराम राघवन की सैफ अली खान, करीना कपूर, गुलशन ग्रोवर, प्रेम चोपड़ा, रवि किशन, अदिल हुसैन, मलिका हेडन, शाहबाज़ खान, राम कपूर, एन ली रोबटर्स, मलिका हेडेन, अंशुमन सिंह, मरियम जाकारिया, जाकिर हुसैन और धीरेन्द्र दिवेदी के अभिनय वाली फिल्म एजेंट विनोद.

फिल्म क्यों देखें : शानदार फिल्म है. **फिल्म क्यों ना देखें :** ऐसा मैं नहीं कहूँगा. एक बार जरूर देखें.

ब्लड मनी (एक्शन थ्रिलर)

पैसे की महत्वकांक्षा और रिश्तों की जरूरत के सच के साथ जिन्दगी का तालमेल आसान नहीं. पैसा गया तो फिर आ भी सकता है पर पैसे से जुड़ा रिश्ता अगर महत्वकांक्षा के गुंजल में फंसा तो फिर उसके बचे रहने की गुंजायश कम है. बस यही छोटा सा सन्देश देती है निर्देशक विशाल म्हाडकर की कुणाल खेमू, अमृता पुरी, मनीष चौधरी, मिया उयिदा और संदीप सिकंद के अभिनय वाली फिल्म ब्लड मनी.

फिल्म क्यों देखें : एक अच्छी फिल्म है. **फिल्म क्यों ना देखें :** ऐसी कोई बात नहीं इसमें.

बम्बू (कामेडी)

जिन्दगी का कोई भरोसा नहीं. कब उसके साथ कोई बम्बू (मुसीबत) अटक जाये. यही नहीं इस बम्बू का भी कोई भरोसा नहीं कि कब जिन्दगी की आशाओं का आसमान फाड़ दे. लब्बो लुआब ये है कि पंगा मत ले यार नहीं तो बम्बू अटक जाएगा. इसका कोई भरोसा नहीं कब आएगा और कहाँ से आएगा. बस यही सावधानी सिखाने की कोशिश करती है निर्देशक जगदीश राजपुरोहित की केविन ट्रे, शरत सक्सेना, संजय मिश्रा, सुधीर पांडे और सुमित कौल के साथ मैंडी ताखार के अभिनय वाली फिल्म बम्बू.

> *जिंदगी में तरक्की और सफलता जरूरी है लेकिन पहले देख ले कि कहीं इस दौड़ में रिश्तों को तो नहीं खो रहे हैं.*

फिल्म क्यों देखें : इस हफ्ते आपके पास चुनने को फिल्में कम हैं. **फिल्म क्यों ना देखें :** यह भेजा फ्राई शैली की फिल्म नहीं है.

बिट्टू बॉस (सोशल ड्रामा)

मामला रिश्तों का हो या पैसों का. आपके अन्दर का इंसान कभी नहीं बदलता. बस यही छोटा सा सन्देश देती है निर्देशक सुपवित्र बाबुल की पुलकित सम्राट, अमिता पाठक, राजेन्द्र सेठी और मोहन कपूर के अभिनय वाली फिल्म बिट्टू बॉस.

फिल्म क्यों देखें : अच्छी फिल्म है. फिल्म क्यों ना देखें : अगर बैंड बाजा बारात जैसी फिल्म देख चुके हों.

अब होगा धरना अन लिमिटिड (कामेडी)

सच होता है और एक दिन वो सामने आ ही जाता है पर ये भी सच है कि इस सच के सचों का सच जानने के लिए झूठ और उसके सच को जानना जरूरी है. निर्माता और निर्देशक दीपक तंवर की ओमकार दास मानिकपुरी, मिलिंद गुणाजी, सुनील पाल, एहसान कुरैशी, सौरभ मलिक और रेखा राणा के अभिनय वाली फिल्म अब होगा धरना अन लिमिटिड भी दुनिया समाज और राजनीति के कुछ ऐसे ही झूठों के सचों को दिखाने वाली है.

फिल्म क्यों देखें : अगर भ्रष्ट लोगों के सच देखना चाहते हैं. **फिल्म क्यों न देखें :** विषय के हिसाब से कमजोर फिल्म है.

छोड़ो कल की बातें (कामेडी)

जिंदगी में तरक्की और सफलता जरूरी है लेकिन पहले देख ले कि कहीं इस दौड़ में उन रिश्तों को तो नहीं खो रहे हैं जो हमारी सफलता से पहले के संघर्ष में हमारे साथ हर पल जुड़े रहते हैं. कुछ ऐसा ही सन्देश देने की कोशिश करती है निर्देशक प्रमोद जोशी की सचिन खेडेकर और अनुपम खेर की मुख्य भूमिकाओं वाली फिल्म छोड़ो कल की बातें. फिल्म में मृणाल कुलकर्णी, अतुल परचुरे, अंजन श्रीवास्तव, श्रुति वालेंकर, बरखा बिष्ट, विजय पाटकर, सुरेश मेनन, राजेश उपाध्याय, किशोर प्रधान, राघवेन्द्र कदकोल, स्वप्निल राज शेखर, और बलजी अय्यर की भी भूमिकाएं हैं.

फिल्म क्यों देखें : अच्छी फिल्म है. **फिल्म क्यों ना देखें :** अगर इसे केवल कामेडी फिल्म समझ रहे हों. ■

अर्चना पैन्यूली

१७ मई १०६३ को कानपुर में जन्म. गढ़वाल विश्वविद्यालय, देहरादून से एम.एससी. पचास से अधिक कहानी, लेख, कवितायें व साक्षात्कार प्रकाशित. 'परिवर्तन' एवं 'वेयर डू आई बिलांग' उपन्यास प्रकाशित. साहित्यिक संस्था, महिला मंच, देहरादून ने साहित्य मे योगदान के लिये सम्मानित किया. इंडियन कल्चरल एसोसियेशन कोपनहेगन ने प्रेमचन्द पुरस्कार से सम्मनित किया. वर्तमान में आप होरशोल्म इन्टरनेशनल स्कूल, डेनमार्क में अध्यापिका हैं. डेनमार्क आने से पूर्व मुंबई में लगभग नौ वर्षो तक शिक्षण कार्य किया.

संपर्क : Bryggergade 6,2,4 2100 Copenhagen, Denmark. Email : apainuly@gmail.com

जापान अन्तर्राष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन के विविध आयाम

भारत-जापान राजनयिक सम्बन्ध स्थापना की ६०वीं जयंती (१९५२-२०१२) के उपलक्ष्य में टोक्यो विदेशी भाषा विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित द्वितीय अंतर्राष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन विविध आयामों - हिंदी अध्यापन, लेखन, सिनेमा, संगीत, जन संचार एवं मीडिया - को लेकर सम्पन्न हुआ. भारत के अलावा, हंगरी, मोरिशस, त्रिनिदाद, डेनमार्क, अमेरिका आदि देशों से हिंदी अध्यापकों, साहित्यकारों व गायकों ने इस सम्मेलन को विविध रंग प्रदान किये. तीन दिवसीय सम्मेलन में हिंदी के इतिहास, विकास, परिदृश्य, स्थिति एवं वैश्विक प्रचार-प्रसार को लेकर कई तरह की चर्चाए हुई. सभी प्रतिभागियों ने अपने-अपने सारगर्भित विचार प्रकट किये.

हिंदी की अनेकों बोलियां हैं. जिस बोली को हिंदी का सर्वमान्य रूप माना गया उस खड़ी बोली का विकास लगभग एक हजार वर्ष पूर्व हुआ है. अपने एक हजार वर्ष की जीवन यात्रा में हिंदी ने निःसन्देह अपने स्वरूप को काफी सुदढ़ व परिष्कृत किया है. आज हिंदी एक विशाल जनसंख्या की मातृभाषा व पूरे हिंदुस्तान की सम्पर्क भाषा है. यही नहीं विश्व स्तर की प्रमुख भाषाओं में हिंदी भी एक है. लेकिन हिंदी में जो सम्भवनायें हैं, तद्नुरूप हिंदी को भाषा जगत में वह स्थान नहीं मिल पाया है, जिसकी वह अधिकारिणी है. बहुभाषी देश होने के कारण हिंदी को देश की राजभाषा बनने में भी संघर्ष का सामना करना पड़ा. विश्व में चीनी और अंग्रेजी भाषा के पश्चात तीसरे स्थान पर रहने वाली हिंदी भाषा के अस्तित्व के लिए संघर्ष की स्थिति बनी रहती है, विशेषकर हमारी नई पीढ़ी का हिंदी के प्रति दृष्टिकोण चिंतनीय है.

सम्मेलन में डॉ. मारिया नेज्यैसी (ऐल्ते यूनिवर्सिटी, बुडापेस्ट, हंगरी), डॉ. सुषम बेदी (कोलंबिया यूनिवर्सिटी न्युयॉर्क) के अतिरिक्त टोक्यो व ओसाका यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण, डॉ. हरजेन्द्र चौधरी, प्रो. ताकेशी फुजेई, प्रो. हिदेआकि इशिदा, प्रो. तोमियो मिजोकामी, प्रो. योशिफमी मिजुनो आदि ने विदेशी भाषा के रूप में हिंदी भाषा के शिक्षण में चुनौतियां एवं उपलब्धियों पर प्रकाश डाला तो डॉ. माधुरी सुबोध एवं अमीषा अनेजा (लेडी श्री राम कालेज, दिल्ली) ने भारत में हिंदी शिक्षण की कठिनाइयों पर चर्चा की.

नई पीढ़ी के लिए हिंदी का बदलता स्वरूप, कई हिंदी अध्यापकों का अनुभव बयाँ करता है कि भारत में अधिकतर विद्यार्थी हिंदी को सिर्फ एक परीक्षा की दृष्टि से देखते हैं. कोई कथा वस्तु, कोई पात्र उन्हें स्मरणीय नहीं. उनका कोई प्रिय कवि नही होता. ऐसा लगता है कि हिंदी उन पर थोपी हुई है.

अपनी मातृभाषा में एक ठोस बुनियाद गढना मानसिक व शैक्षिक विकास के लिए आवश्यक है. किसी देश की भाषा की मांग विश्व में उस देश की राष्ट्रीय शक्ति को चित्रित करती है. हिन्दी विद्वान प्रो. तोशियो तनाका ने सम्मेलन में यहाँ तक कह डाला कि विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा के रूप में हिन्दी का तीसरा नहीं पहला स्थान है. लेकिन अफ़सोस हिंदी

> *विश्व स्तर की प्रमुख भाषाओं में हिंदी भी एक है. लेकिन हिंदी में जो सम्भवनायें हैं, तद्नुरूप हिंदी को भाषा जगत में वह स्थान नहीं मिल पाया जिसकी वह अधिकारिणी है.*

को विश्व में वह स्थान नहीं प्राप्त है जो छोटे-छोटे मुल्कों की भाषाओं को है. मातृभाषा को अपर्याप्त महत्व एक स्वस्थ लोकतंत्र की स्थापना नही कर सकती.

टोक्यो विदेशी विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो. ताकेशी फुजेई ने उद्घाटन समारोह में बताया कि टोक्यो यूनिवर्सिटी में हिंदी शिक्षण १९०८ से हो रहा है, यानि प्रथम विश्व युद्ध से पहले से. कुछ वर्षों पहले जापान के ओसाका विश्वविद्यालय में भी हिंदी विभाग की स्थापना हुई. सम्मेलन के अंतिम दिन प्रो. फुजेई ने प्रतिनिधियों को विश्वविद्यालय की हाईटेक लाइब्रेरी का भ्रमण करवाया, जहां १८००, तब का हिंदी साहित्य संचित है जब हिंदी का वर्तमान मानक स्वरूप भी नहीं उभरा था और हिंदी 'हिन्दवी' कहलाती थी. सरिता, धर्मयुग, कादम्बनी, साप्ताहिक हिन्दुस्तान आदि विविध हिंदी पत्रिकाओं के वर्षों पुराने अंश व अन्य दुर्लभ हिंदी साहित्य लायब्रेरी में संचित है.

जापानी लोककथा उराशिमातारों पर आधारित प्रो. सुरेश ऋतुपर्ण द्वारा रचित व निर्देशित हिंदी नाटक 'प्रसन्ना' पर जापानी विद्यार्थियों की प्रस्तुतिकरण सम्मेलन का एक अति रोचक अंश था. बॉलीवुड गाने पर जापानी छात्र-छात्राओं का उन्मुक्त नृत्य सभी को आह्लादित कर गया. जापानियों को अपनी भाषा के गहरे लय के साथ हिंदी बोलना मंत्र मुग्ध कर गया. हिंदी साहित्य व भारतीय संस्कृति के प्रति जापानियों का अनुराग व लगाव देखकर मन कायल हो गया.

प्रो. हिदेआकी इशिदा ने अपने वक्तव्य में बताया कि पहले जब उनके विभाग में जापानी छात्र-छात्राएं हिंदी पढ़ने आते थे तो वे कहते थे कि उन्हें भारतीय संस्कृति व दर्शन में रुचि है, इसलिए वे हिंदी सीखना चाहते हैं. मगर अब इधर एक-दो वर्षों से दूसरे जवाब सुनने में आने लगे हैं कि भारत की इकोनोमी सुदृढ़ हो रही है, भारत में रोजगार के अवसर बढ़ रहे हैं, इसलिए वे हिंदी सीखना चाहते हैं.

मॉरिशस से पधारे विश्व हिन्दी सचिवालय के उप महासचिव युवा श्री गंगाधरसिंह सुखलाल ने अपने वक्तव्य में रोष प्रकट किया कि हिंदी शिक्षण की रूपरेखा, स्वरूप व दिशा तय करने वाले व्यक्ति प्राय अधेड़ या बुजर्ग होते हैं. ऐसे संगठनों में जवानों को शामिल नहीं किया जाता. आज की नई पीढ़ी के लिए मानक हिंदी का क्या अभिप्राय है? वे किस विधि व शैली में हिंदी पढ़ना चाहेंगे? वे हिंदी साहित्य में क्या खोजना चाहते हैं? हिंदी की रूपरेखा तय करते संगठनों में जब तक युवाओं को शामिल नहीं किया जाएगा, हिंदी का एक उचित स्वरूप युवाओं के लिए नहीं उभर कर आ पायेगा.

स्वयंप्रभा साहित्यिक संस्था, देहरादून के अध्यक्ष डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र ने कहा कि वे इसलिए भी जापान आना चाहते थे कि जापानी अपनी भाषा व संस्कृति से जिस तरह प्रेम करते

> *हिंदी शिक्षण एवं सीखने के पहलू पर इंटरनेट व सूचना प्रौद्योगिकी की उपयोगिता पर गगन शर्मा ने अपने एक शानदार पावर पोइंट प्रेजन्टेशन द्वारा प्रतिभागियों को प्रभावित कर दिया.*

हैं, हम भारतवासियों के लिए प्रेरणादायक है. जापानीज कई सन्दर्भों में हमारे लिए ही नहीं, पूरे विश्व के लिए एक रोल मॉडल है. एक ऐसा देश जो अमेरिका के परमाणु बम प्रहारों के बाद कमर तान कर खड़ा हो गया, जिसे सुनामी जैसे प्राकृतिक प्रकोप हिला नहीं पाए, दुनिया के लिए एक मिसाल है.

दैनिक जनसत्ता के सम्पादक व यशस्वी लेखक श्री ओम थानवी ने हिंदी जन संचार माध्यम, अखबारों में बिगड़ती हिंदी भाषा का वर्णन किया. यह सही है की आज की युवा पीढ़ी की हिंदी जयशंकर प्रसाद, मैथिलीशरण या अज्ञेय की हिंदी नही है. लेकिन हिंदी को कितना डाइल्युट करेंगे, कितना उसका घोल बनाएँगे, यह एक सीमा तक ही होना चाहिए. एक सात शब्दों के हिंदी वाक्य में चार शब्द इंग्लिश के डाल देना हिंदी की शुद्धता को बुरी तरह नष्ट करते हैं.

जापान हिंदी सम्मेलन ने निसंदेह कई पहलूओं को स्पर्श किया. काफी कुछ इस सम्मेलन पर विचार-विमर्श हुआ. सम्मेलन रोचक भी रहा. निराशाजनक पहलू यह रहा कि यह सम्मेलन जापान निवासी भारतीयों को नहीं खींच पाया. कहा जाता है कि जापान में २३-२४ हजार के करीब भारतीय बसे हैं और अधिकतर उनमें बुद्धिजीवी वर्ग के हैं मगर इतने बड़े पैमाने में सम्पन्न हुए टोक्यो हिंदी सम्मेलन में २०-२५ के करीब बाहर से आये प्रतिनिधि व टोक्यो हिंदी विभाग के शिक्षक एवं छात्र-छात्राओं के अतिरिक्त स्थानीय भारतीयों की उपस्थिति गौण रही. हाँ, जिस संध्या को पार्श्व गायिका रेखा भारद्वाज ने 'ससुराल गेंदा फूल', 'ओह डार्लिंग' जैसे अपने मादक गीत प्रस्तुत किये, जरूर कुछ स्थानीय भारतीयों की सभागर में उपस्थिति रही.

विगत दस वर्षों से टोक्यो यूनिवर्सिटी आफ फोरेन स्टडीज में हिंदी अध्यापन में सलग्न एवं सम्मेलन के मुख्य संयोजक व संचालक डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण, सम्मेलन से सम्बन्धित सभी इंतजाम करते हुए अकेले ही नजर आये. टोक्यो यूनिवर्सिटी के हिंदी विभाग के विद्यार्थियों व स्टाफ का जो कुछ सहयोग उन्हें था वह विश्वविद्यालय के सभागर में होते सत्रों तक ही सीमित था.

मात्र हिंदी जगत से जुड़े लोगों की उपस्थिति ही ऐसे सम्मेलनों में पर्याप्त नही है. जब तक ऐसे सम्मेलन जनसाधारण को आकर्षित नही करेंगे, उनकी उनमें भागीदार नही होगी सफलता की कसौटी पर खरे नही उतरेंगे. ऐसे सम्मेलनों में हिंदी की चर्चा होगी, पत्रिकाओं व समाचार पत्रों में जिक्र भी होगा. मगर हिंदी का सही मायनों में उत्थान होगा? यह एक विवादास्पद पहलू है.■

श्रीमती आशा मोर

जन्म २५ अक्टूबर १९६० में झाँसी, उ.प्र., शिक्षा : बी.एस-सी., २००२ में ट्रिनिडाड अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन तथा २००३ में सूरीनाम में सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन में भाग लिया. पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ प्रकाशित. सम्प्रति : मैनेजिंग डायरेक्टर सेन्ट क्लैएर, एम. आर.आई. सेन्टर, ट्रिनिडाड और टोबेगा.

सम्पर्क : asha.mor1@gmail.com

प्रवासी भारतीय दिवस की यादें

यूँ तो प्रत्येक वर्ष ही हम भारत जाते हैं. लेकिन इस बार किसी विशेष प्रयोजन के साथ हम भारत जा रहे थे, इसलिए मन में और भी ज्यादा उमंग थी. इस बार प्रवासी भारतीय सम्मेलन में भारत सरकार द्वारा त्रिनिदाद की प्रधानमंत्री श्रीमती कमला प्रसाद विशेषार को मुख्य अतिथि बनाया गया था तथा उनको सम्मानित किया जाने वाला था.

सभी देश विदेश से प्रतिनिधि इस सम्मेलन में हिस्सा लेने आए हुये थे. लगभग १५०० प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया. त्रिनिदाद से लगभग ६० व्यक्ति भारत पहुंचे. उनमें प्रधानमंत्री के अलावा और कई मंत्री, त्रिनिदाद में भारत के उच्चायुक्त श्री मलय मिश्रा जी, मीडिया के लोग तथा कई व्यापारी और अलग-अलग क्षेत्रों के व्यक्ति भी शामिल थे.

मैं और मेरे पति डॉ. दिनेश मोर दोनों ही सात तारीख की सुबह जयपुर पहुँच गए थे. जयपुर एयरपोर्ट पर प्रवासी भारतीय सम्मेलन के लिए आए व्यक्तियों की सुविधा के लिए एक शिविर अलग से बनाया हुआ था जहां पर तिलक लगाकर और माला पहनाकर उनका स्वागत किया जा रहा था. उसके बाद जो भी प्रतिनिधि जिस होटल में ठहरने वाले थे उनको उनके गंतव्य तक पहुंचाने के लिए प्रबंध था. होटलों से गाड़ियाँ लेने के लिए आई हुयी थीं.

हमारा ड्राइवर हमें जय विलास पैलेस होटल लेकर चला. पूरे रास्ते में प्रवासी सम्मेलन में आने वाले प्रतिनिधियों के स्वागत के लिये, बड़े-बड़े बैनर लगे हुये थे. जिन पर भारतीय प्रधानमंत्री तो किसी पर भारतीय राष्ट्रपति के चित्र नमस्कार की मुद्रा में हाथ जोड़े हुये बने थे. ड्राइवर ने रास्ते में बताया कि इस सम्मेलन की वजह से पूरे शहर की सफ़ाई हो गई है तथा पूरे शहर को सजा दिया गया है.

होटल बहुत आलीशान था. त्रिनिदाद से आने वाले कई मंत्री, मीडिया के लोग व कई अन्य प्रतिनिधि इस होटल में ठहरे थे. हमारे कमरे की चाबी लेकर हमारे साथ एक परिचारिका ने हमको कमरे तक पहुंचाया. हम लोग तुरंत ही तैयार होकर बिडला ऑडिटोरियम, जहां सम्मेलन था, के लिए रवाना हो गए. वैसे तो जयपुर हम पहले भी जा चुके थे, लेकिन इस बार जयपुर में अलग किस्म की ही रौनक थी.

आधा घंटे में हम ऑडिटोरियम पहुँच गए. वहाँ पर बहुत गहमा-गहमी तथा चहल-पहल थी. कई छोटे-छोटे शिविर बने हुये थे, जहां पर सब लोग अपने अपने नाम लिखे हुये तमगे तथा उपहार स्वरूप दिया जा रहा जूट का बना थैला प्राप्त कर रहे थे. इस थैले में प्रतिदिन के कार्यक्रम के बारे में जानकारी तथा सभी कार्यक्रम के अलग-अलग निमंत्रण पत्र थे. इसमें प्रसिद्ध कथाकार श्री मुंशी प्रेमचंद जी की प्रसिद्ध

> सम्मेलन में त्रिनिदाद से लगभग ६० व्यक्ति भारत पहुंचे. उनमें प्रधानमंत्री के अलावा कई मंत्री, त्रिनिदाद में भारत के उच्चायुक्त, मीडिया के लोग तथा अनेक व्यापारी शामिल थे.

कहानियों का संग्रह नामक एक पुस्तक तथा एक राजस्थानी शाल भी उपहार स्वरूप दिया गया था.

एक बड़ी खुली जगह में खाने-पीने की व्यवस्था थी. जहां सभी लोग एक दूसरे से मिल जुल रहे थे तथा अपने परिचय आदान प्रदान कर रहे थे.

कई सारे अलग-अलग, बड़े-बड़े, कमरों में अलग-अलग बातचीत के दौर चल रहे थे. जिस व्यक्ति की रुचि जिस क्षेत्र में थी, उसके अनुसार वह उस कमरे में जा रहा था. हम लोग जहां पर स्वास्थ्य सेवाओं में निवेश की बातचीत चल रही थी, उस कमरे में गए. वहाँ पर आए सभी व्यक्तियों के साथ, विचारों का आदान प्रदान हुआ. काफी कुछ सीखने, समझने को मिला. विभिन्न देशों से आए मेडिकल डॉक्टर्स से मुलाकात हुई. कई नए मित्र बने. कुल मिलाकर पूरा वातावरण रुचिकर लगा.

शाम को राजस्थान के मुख्यमंत्री जी द्वारा रात्रिभोज तथा संगीत के कार्यक्रम का आयोजन था. हम सभी त्रिनिदाद से आये लोगों का जत्था समय पर यथा स्थान पहुंच गया. संगीत का कार्यक्रम शुरू हो चुका था. त्रिनिदाद की प्रधानमंत्री श्रीमती कमला प्रसाद विशेषार, गुलाबी रंग की साड़ी में गुलाब के फूल जैसी नजर आ रही थीं. वो सभी के आकर्षण की केंद्र थी. दूसरा व्यक्ति जो सबसे ज्यादा लोगों के आकर्षण का केंद्र थे, वह थे त्रिनिदाद के प्रसिद्ध क्रिकेट खिलाड़ी बल्लेवाज़ ब्रायन लारा. बहुत सारे व्यक्ति उनके साथ फोटो लेने के लिए उत्सुक थे. रात्रिभोज के बाद सभी अपने अपने होटलों के लिए रवाना हो गए.

अगले दिन सुबह ८ जनवरी को सभी फिर से बिड़ला ऑडिटोरिअम में एकत्रित हुये. आज सम्मेलन का औपचारिक रूप से उद्घाटन था, जिसके लिए भारत के प्रधानमंत्री श्री मनमोहन सिंह जी जयपुर पहुँच चुके थे. ठीक नौ बजे कार्यक्रम शुरू हो गया. मंच पर कई महान विभूतियाँ मौजूद थी. उद्घाटन के बाद सभी के भाषण हुये. श्रीमती विशेषार ने कहा भारत उनकी 'मदरलेंड' नहीं, बल्कि उनकी 'ग्रांडमदरलेंड' है. सभी को उनका व्याख्यान बहुत पसंद आया. पूरा ऑडिटोरियम तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा. लगभग ग्यारह बजे यह कार्यक्रम समाप्त हुआ.

सम्मेलन में कई प्रदेशों के मुख्यमंत्री भी आए हुये थे. कई राज्यों के शिविर लगे हुये थे तथा उनके कर्मचारी वहाँ आसीन थे. वे सभी शिविर में आए व्यक्तियों का स्वागत करते थे तथा उन्हें आवश्यक जानकारी प्रदान करते थे. जयपुर शहर के कई व्यापारियों ने भी वहाँ अपनी दुकानें लगाई हुयी थीं.

कई अलग-अलग कमरों में विभिन्न राज्यों के मुख्यमंत्री अपने कुछ और साथियों के साथ सभी प्रतिनिधियों के साथ मिलने के लिए तथा बातचीत करने के लिए उपस्थित हुये थे. जो भी प्रतिनिधि जिस राज्य से है, उस राज्य के मुख्यमंत्री से मिलने गया.

> *हवाई अड्डे पर सम्मेलन में आए हुये सभी अतिथियों को एक छोटी, सुंदर सी लाल डिब्बी दी गयी. जिसमें तरह-तरह की मीठी सौंफ़-सुपारी थी. हम सबने खुशी-खुशी, अपने मन में ढेर सी यादें सँजोये जयपुर से विदाई ली.*

शाम को सिटी पैलेस होटल में सबका रात्रिभोज आयोजित किया गया था. संगीत संध्या और आतिशबाजी का भी बहुत अच्छा प्रबंध था. कुल मिलाकर शाम बेहद खूबसूरत थी.

अगली सुबह, ९ जनवरी को सभी प्रतिनिधि फिर से बिडला ऑडिटोरिअम में एकत्रित थे.

आज कुछ मुख्यमंत्रियों के भाषण होने थे. तथा उनके साथ संबन्धित प्रश्नकाल भी संभावित था. श्रीमान वायलर रवि जी ने कार्यक्रम की शुरुआत की और एक-एक करके सभी उपस्थित मुख्यमंत्रियों को अपना व्याख्यान प्रस्तुत करने के लिए आमंत्रित किया. सभी ने अपने व्याख्यान प्रस्तुत किए. प्रतिनिधियों ने प्रश्न पूछे, उनका जबाब उन्हें दिया गया.

सभी को गुजरात के मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी जी का व्याख्यान बहुत पसंद आया. उनके व्याख्यान की समाप्ति पर सभी ने खड़े होकर तालियों के साथ उनका अभिनंदन किया. इसके बाद सभी दोपहर के भोजन के लिए बाहर आ गए.

शाम पाँच बजे सम्मेलन की समाप्ति का कार्यक्रम शुरू होना था. साढ़े चार बजे ही सभी प्रतिनिधि ऑडिटोरियम में वापस आने लगे. ठीक पाँच बजे त्रिनिदाद की प्रधानमंत्री, श्रीमती कमला प्रसाद विशेसर जी, भारत की राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवी सिंह पाटिल जी, श्रीमान वायलर रवि जी तथा अन्य सदस्य भी पहुँच गए. भारत के राष्ट्रीय गान के साथ कायक्रम की शुरुआत हुयी. फिर सभी का अभिनंदन किया गया. श्रीमती प्रतिभा देवी सिंह पाटिल जी ने श्रीमती कमला प्रसाद विशेषर को सम्मान प्रदान किया. श्रीमती कमला जी ने श्रीमती प्रतिभा जी के चरण स्पर्श करके उन का आभार प्रदर्शित किया. सारा हॉल तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा. कुछ अन्य प्रतिभाशाली व्यक्तियों को भी सम्मान प्रदान किए गए. श्रीमती कमला जी तथा श्रीमती प्रतिभा देवी सिंह जी का व्याख्यान हुआ. सबका धन्यवाद व्यक्त किया गया. इस तरह समारोह सम्पन्न हुआ .

अगले दिन सुबह १० जनवरी को सभी हवाई अड्डे के लिए रवाना हुए. हवाई अड्डे पर सम्मेलन में आए हुये सभी अतिथियों को एक छोटी, सुंदर सी लाल डिब्बी दी गयी. जिसमें तरह-तरह की मीठी सौंफ़-सुपारी थी. हम सबने खुशी-खुशी, अपने मन में ढेर सी यादें सँजोये जयपुर से विदाई ली.■

गर्भनाल का ६५वाँ अंक हर दृष्टि से प्रशंसनीय है. स्थायी स्तंभ तो सदा की भाँति रोचक और ज्ञानवर्धक हैं ही. लेख 'सुन्दरकांड का अन्तर्पाठ्यत्व' विशेष रूप से लेखक के वैदुष्य का परिचायक है. कविताएँ नवीनता लिए हुए हैं और कहानियाँ सशक्त और मार्मिक हैं. पेरिस यात्रा पढ़ते हुए मेरी अपनी ४५ वर्ष पूर्व की स्मृतियाँ पुनर्जीवित हो उठीं. आश्चर्य है कि आज भी फ्रेंच न जानने वाले व्यक्ति को वैसी ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है. सभी समझते हैं कि अंग्रेज़ी से सारी दुनिया में काम चल जाएगा किन्तु ऐसा नहीं है. हाँ, जर्मन जानने से ऑस्ट्रिया, स्विटज़रलैंड और इटली के उत्तरी भाग में भी कोई कष्ट नहीं हुआ. जर्मनी में तो कहना ही क्या. 'मुद्दा' में प्रस्तुत लेख सारगर्भित हैं. अन्य लेखों में से किस-किस की बात करें, सभी अच्छे लगे. अंक के सुन्दर प्रकाशन हेतु बधाई.

शकुन्तला बहादुर, अमेरिका

पुरस्कारों की घोषणा

डॉ. सुधा ओम ढींगरा

श्याम त्रिपाठी

१५वाँ 'अम्बिकाप्रसाद दिव्य पुरस्कार' अमेरिका की डॉ. सुधा ओम ढींगरा के कहानी संग्रह 'कौन-सी ज़मीन अपनी' और कैनेडा से प्रकाशित पत्रिका 'हिन्दी चेतना' के मुख्य सम्पादक श्री श्याम त्रिपाठी को श्रेष्ठ संपादन के लिए 'अम्बिका प्रसाद दिव्य रजत अलंकरण' प्रदान करने की घोषणा २० अप्रैल २०१२ को भोपाल स्थित, साहित्य सदन में आयोजित एक समारोह में की गई. अन्य साहित्कारों में दिल्ली के वेद प्रकाश कंवर के उपन्यास 'सेरीना', बैरसिया के श्री कैलाश पिचौरी के काव्य संग्रह 'सन्नाटे की सुराही में' को भी अम्बिकाप्रसाद दिव्य पुरस्कार और श्री श्याम त्रिपाठी के साथ आठ और रचनाकारों को 'अम्बिकाप्रसाद दिव्य रजत अलंकरण' प्रदान किए जाएँगे. अन्य रचनाकार हैं– डॉ. श्रीमती नताशा अरोड़ा, नोएडा के उपन्यास 'युगांतर', श्री कुमार शर्मा अनिल, चंडीगढ़ के कहानी संग्रह 'रिश्ता रोज़ी से', श्री कुंवर किशोर टंडन, भोपाल के काव्य संग्रह 'सुबह से सुबह तक', श्री राजेन्द्र शर्मा 'अक्षर', भोपाल के निबंध संग्रह 'शब्द वैभव', डॉ. एम.एल. खरे, भोपाल के व्यंग्य संग्रह 'मुझ से भला न कोए', डॉ. अशोक गुजराती, दिल्ली के बाल साहित्य 'ख़ुशी के लिए', श्री संतोष सुपेकर, उज्जैन के लघुकथा संग्रह 'बंद आँखों का समाज', श्रीमती आशमा कौल, फरीदाबाद के काव्य संग्रह 'बनाए हैं रास्ते'.

प्रस्तुति : पंकज सुबीर

गर्भनाल के अप्रैल-२०१२ अंक में सभी कवितायें एक से बढ़कर एक हैं. शिव गौतमजी की कविता 'एक पत्ती और हवा की कहानी' विशेष पसंद आई. डॉ. मोनिका शर्मा का विचार अच्छा लगा. राजकिशोरजी का नजरिया आस्तिकों के खिलाफ है. लेकिन मेरी सोच कहती है कि ईश्वर में आस्था रखने से कुछ और मिले या न मिले पर मानसिक शान्ति अवश्य मिलती है, जो अपने आप में एक बड़ी उपलब्धि है.

आशा मोर, त्रिनिदाद

६५वें अंक का पीडीएफ संस्करण मिला. महेन्द्र कुमार शर्मा की प्रतिक्रिया 'मोसे छल किये जाये' पर व अन्य लेखों पर कि हिन्दी को वो सम्मान नहीं मिल रहा जो उनके जमाने में था. उनके मन की पीड़ा के साथ-साथ परिवर्तन की आकांक्षा को भी बताता है कि हिन्दी सम्मानित ही रहे अपने भारत राष्ट्र में. मैं कहना चाहूँगी- मीडिया इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की शुरुआत कर चुका है. आज रंगोली देख रही थी. रंगोली हिन्दी में प्रसारित होता है. कर्नाटक देश के दक्षिण में है वहाँ दक्षिणी भाषाओं का प्रभुत्व है आज वहाँ के दर्शक ने श्वेता को हिन्दी में पत्र लिखा. हिन्दी में कुछ त्रुटियाँ थी लेकिन एक अच्छी शुरुआत भी है कि दक्षिण हिन्दी से प्रभावित हो रहा है और उत्तर और दक्षिण हिन्दी के बहाने पास आ रहे हैं. डान्स इण्डिया डान्स में भी दक्षिण से आये बच्चे मंच पर हिन्दी में बोलने का प्रयास करते हैं. निराशा है तो आशा भी है. हम भी अपने घरों में प्रयास कर रहे हैं कि बच्चे हिन्दी सीखें. वातावरण के कारण ऐसा हुआ है. मेरी बेटी अंग्रेजी माध्यम के स्कूल में पढ़ती है, लेकिन राजस्थान बोर्ड की हिन्दी में छपी किताबें भी बराबर उपयोग करती है. मेरी सहेली ने उसे परीक्षा में गणित विषय की राजस्थान बोर्ड की किताबों से पढ़ते देखा तो आश्चर्य से बोली- ये हिन्दी में लिखी किताब क्यों देख रही है. मुझे समझाना पड़ा कि जो प्रश्न रूप में सवाल सीबीएसई में है वो राजस्थान बोर्ड में हल के रूप में दिया है जिससे उसे पढ़ने में मदद मिलती है.

बबीता, जयपुर

सारगर्भित लेखों और भाव-भीनी कविताओं से सज्जित 'गर्भनाल' का अप्रैल २०१२ अंक देखा. बधाई देना चाहूँगा. तस्वीरों के साथ कविता का समन्वय बहुत सुन्दर बन पड़ा है. मन हो रहा है कि मैं भी इस सार्थक पत्रिका में अपनी रचना भेजूँ.

अशोक गुप्ता, गाजियाबाद

आपकी बात

आपकी पत्रिका गर्भनाल निसंदेह एक सुधि साहित्यिक पत्रिका है, जिसमें तमाम विषयों को संजोया गया है. आप मेरी शुभकामनायें स्वीकार करें.

डॉ. लालित्य ललित
नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया

गर्भनाल का ताजा अंक प्राप्त हुआ. राजकिशोर का लेख अच्छा लगा. व्यंग्य भी प्रभावित करता है.

यशवंत कोठारी, जयपुर

आपकी पत्रिका प्राप्त हुई. मुझे अब तक ई-पत्रिका का इतना अच्छा अनुभव नहीं मिला था, लेकिन आपकी पत्रिका मुझे भा गई. मेरे मित्र लक्ष्मण हरद्वानी ने इसके बारे में बताया था. उनको धन्यवाद कहता हूँ. मैं भी कोशिश करूंगा कि आपकी यह पत्रिका अधिक से अधिक हिन्दी प्रेमियों तक पहुँचे. इसके लिए मैं इसे अन्य मित्रों को फॉर्वर्ड कर रहा हूं.

नामदेव ताराचंदानी
www.tarachandani.com

Thanks for introducing me to a wonderful magazine, honestly I did not know about this magazine.

My own observations about NRIs is as under : (sorry I do not know how to type in HINDI)

Those Indians who leave India and move to UK, USA, Canada, Australia and Newzealand, they want to get lost in these countries. They are happy being in these countries and happy with NRI tag or American citizen of Indian origin tag. At least they can say that America/UK has accepted them or they are happy by getting absorbed in UK/USA/Canada. They can say that first home is USA and second is India.

The situation is worse for those who are in Gulf region, even though it is tax free region and good quality of life in comparison to India but when ever an Indian introspects and retrospects he finds himself at an air port. An air port is an air port how so ever beautiful or luxurious it may be , still you can not label air port as your home. So one can say that the situation is that of TRISHANKU, neither NRI in pure sense and nor Indian.

Dr.Dinesh Seth, Doha (Qatar)

This is a wonderful idea to have a regular column, which has a quiz on Ram charit manas. It will make Indian children & not just children I would say adults too familiar with Ram charit Manas a wonderful creation by Tulsidas. Quiz is the tool of today. Easy to answer & makes people aware of how much they know & how mush they don't in just a couple of minutes. Feeling of winning is so strong in people that if they can answer some questions, they would love to answer all questions, this will lead to people reading ramcharit maanas. Knowing all answers is not too difficult as it is only one creation that people need to read. Let's hope this is a begining for particularly indian's abroad to become familiar with Indian philosophy, mythology & religion. The name too Kaun Banega Ram Bhakta is so apt!

Dr. Gupta if You become the Uncle Pai of America (Amar Chitra Katha fame) I will not be surprised! Best Regards,

Prof. Sanskritirani Desai, IBS, Mumbai

The quiz will enhance the knowledge about our mythology. I personally find it very difficult to identify the right answers as the questions are of expect able standard.This type of magazines should be promoted for the larger good of the society. I congratulate Om Gupta for taking initiative for conducting the quiz, that enhances our thought process more positively.

Dr Anjali Ganesh, Mangalore

अनुरोध

पाठकों एवं रचनाकारों से अनुरोध है कि प्रतिक्रियायें एवं रचनाएँ यूनिकोड में भेजें, हमें सुविधा होगी.
रचनाओं के साथ संक्षिप्त परिचय एवं फोटो भी भेजें.
अंक के बारे में अपनी प्रतिक्रिया निम्नलिखित ईमेल पते पर भेजें :
garbhanal@ymail.com